समन्वय

एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति।

अष्टम वर्ष

(सौर माघ सं० १९८५—सौर पौष सं० १९८६)

ई० सन् १९२९।

—*—

समन्वय कार्य्यालय।

१८२ ए, मुक्ताराम बाबू स्ट्रीट, कलकत्ता।

वार्षिक मूल्य ३)] [प्रति संख्या ।–)

आठवाँ वर्ष की विषय-सूची।

समन्वय

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम् ।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ॥
—गीता

वर्ष ८] सौर माघ, संवत् १९८५ [अङ्क १

नव वर्ष

उस करुणामय की असीम कृपा से समन्वय अपने जीवन के सात वर्ष पूरे कर इस अंक से आठवें वर्ष में नई आशाओं और नई उमंगों के साथ पदार्पण कर रहा है। इस समय उस परम पिता परमेश्वर को प्रणाम करना और उसके जीवों के प्रति प्रेम प्रदर्शित करना हमारा आवश्यक कर्तव्य है। हमारी प्रार्थना है कि उस विश्व-नियामक के नियन्त्रण में मानव समाज परस्पर सहानुभूति और प्रेम प्रकाशित करता हुआ, सत्य और सेवा के मार्ग पर अग्रसर होता रहे। साथ ही इस अवसर पर समन्वय के दयालु पाठकों को भी धन्यवाद देना हमारा परम कर्तव्य है, जिनकी सहायता और सहानुभूति से वह अपने जीवन के सात वर्ष व्यतीत कर सका और जिनके सहारे उसे अपने मार्ग पर अग्रसर होने की आशा ही नहीं दृढ़ विश्वास भी है।

अपने इस छोटे से जीवन काल में समन्वय ने अपने कृपालु पाठकों के सामने उस महान् भारतीय आदर्श को रखने में कोई बात उठा नहीं रखी, जिस आदर्श को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिये भारतीयों ने कई शताब्दियों से निरन्तर प्रयत्न किया है। वर्तमान भारत दो परस्पर विरोधिनी सभ्यताओं के बीच चल रहा है। एक ओर उसकी प्राचीन

कुम्भ के अवसर पर रामकृष्ण मिशन का सेवाकार्य।

समन्वय प्रेमियों को मालूम होगा कि आगामी मकर संक्रान्ति के अवसर पर तीर्थराज प्रयाग में कुम्भ का मेला होनेवाला है। इस अवसर पर हजारो नहीं, वरं लाखों सनातनधर्मावलम्बी त्रिवेणी स्नान और श्री अक्षयवट तथा वेणीमाधव के दर्शनार्थ वहां उपस्थित होंगे। इसलिये वहां यात्रियों की सेवा, सहायता, औषधि प्रदान तथा भूले भटके यात्रियों को सहायता की कितनी आवश्यकता है, यह भी किसी से छिपी नहीं। फलतः यात्रियों के सेवा के लिये श्रीरामकृष्ण मिशन की ओर से स्वयंसेवकों का एक दल प्रयाग भेजा गया है और उसने अभी से अपना सेवाकार्य प्रारंभ कर दिया है। यह सभी जानते हैं कि इस सेवाकार्य के लिये विपुल अर्थ, वस्त्र तथा अन्न आदि की आवश्यकता है। इसलिये सेवा-धर्म के प्रेमी सर्व साधारण से निवेदन है कि इस पुण्यकार्य में आर्थिक साहाय्य प्रदान कर मिशन के स्वयंसेवकों का हाथ बँटायें। इस कार्य के लिये निम्न लिखित पते से जो कुछ भी आप भेजेंगे वह सादर और सधन्यवाद ग्रहण किया जायेगा। आशा और प्रार्थना है कि सर्वसाधारण इस पवित्र कार्य में मिशन की सहायता करके यश और पुण्य के भागी बनेंगे।

सहायता भेजने के पते—

(१) सेक्रेटरी, श्रीरामकृष्ण मिशन
पो० बेलूड़ (हवड़ा)

(२) मनेजर, अद्वैत आश्रम
१८२, मुक्तारामबाबु स्ट्रीट, कलकत्ता।

समन्वय

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।
मम वर्त्मानुवर्त्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः॥ —गीता।

वर्ष ८] सौर मार्गशीर्ष, सम्वत् १९८६ [अङ्क ११

श्रीरामकृष्णवचनामृत।

(३)

भक्त। ब्रह्मसमाज के आदमी कहते हैं, संसार का कर्म करना ही अपना कर्तव्य है। इस कर्म के त्याग करने से कुछ न होगा।

गिरीश। मैंने देखा, सुलभसमाचार में यही बात लिखी है। परन्तु ईश्वर को जानने के लिये जो कर्म हैं, वही नहीं पूरे किये होते, तिस पर दूसरे कर्म!

श्रीरामकृष्ण जरा मुस्कराकर मास्टर की ओर हेर कर इशारा कर रहे हैं,—'वह जो कुछ कहता है, वही ठीक है।'

मास्टर समझ गये, कर्मकाण्ड बड़ी ही कठिन है।

पूर्ण आये हुए हैं।

श्रीरामकृष्ण। किसने तुम्हें खबर दी?

पूर्ण। सारदा ने।

श्रीरामकृष्ण (पासकी स्त्री-भक्तों से)। इसे कुछ जलपान करने के लिये देना।

अब नरेन्द्र का गाना होगा। श्रीरामकृष्ण और भक्तों की सुनने की इच्छा है। नरेन्द्र गा रहे हैं—

गाना। "पर्वत पाथार। व्योमे जागो रुद्र उद्यत बाज। देव देव महादेव, कालकाल महाकाल, धर्मराज शंकर शिव तारो हर पाप।"

गाना। "हे दीनों को शरण देनेवाले! तुम्हारा नाम बड़ा सुन्दर है! ऐ प्राणों में रमण करनेवाले! अमृत की धारा बह रही है, श्रवण शीतल हो जाते हैं।"

गाना। "जो विपत्ति और भय से परित्राण करनेवाले हैं, ऐ मन, तुम उन्हें क्यों नहीं पुकारते? मिथ्या भ्रम में पड़े हुए इस घोर संसार में डूब रहे हो, यह बड़े दुःख की बात है!"

पल्टू। यह गाना आप गाइयेगा?

नरेन्द्र। कौन सा?

पल्टू। "देखिले तोमार सेई अतुल प्रेम-आनने।
कि भय संसार शोक घोर विपद शासने॥"

नरेन्द्र गा रहे हैं—

"देखिले तोमार सेई अतुल प्रेम-आनने।
किभय संसार शोक घोर विपद शासने॥
अरुण उदये आँधार जेमन जाय जगत छाड़िये।
तेमनि देव तोमार ज्योति मंगलमय विराजिले;
भगत हृदय वीतशोक तोमार मधुर सान्त्वने॥
तोमार करुणा तोमार प्रेम हृदये प्रभु भाविले,
उथले हृदये नयन-वारि राखे के निवारिये।
जय करुणामय, जय करुणामय, तोमार प्रेम गाहिये,
जाय यदि जाक प्राण तोमार कर्म साधने॥"

मास्टर के अनुरोध से फिर गा रहे हैं। मास्टर और भक्तगण हाथ जोड़े हुए गाना सुन रहे हैं—

गाना। "ऐ मेरे मन! हरिरस मदिरा का पान करके तुम मत्त हो जाओ। पृथ्वी पर लोटते हुए तुम उनका नाम ले लेकर रोओ।"

गाना। "ऐ मेरे मन! तुम निरंजन सच्चिदानन्द हरि का चिन्तन करो।"

गाना। "यह संसार तुम्हारी विचित्र रचना है!"

गाना। "आसमान थाली है, उसमें सूर्य और चन्द्र दिये जल रहे हैं, नक्षत्र मोतियों की तरह चमक रहे हैं। मलयानिल धूप है, पवन चमर डुला रहा है। वनराजियां उसकी जीती जागती ज्योति हैं। हे भवखण्डन, यह तुम्हारी कैसी सुन्दर आरती हो रही है! अनाहत नाद के द्वारा तुम्हारी भेरी बज रही है।"

गाना। "उसी एक पुरुषपुरातन—निरंजनपर तुम अपने चित्त को समाहित करो।"

नारायण के अनुरोध करने पर नरेन्द्र ने फिर गाया।

गाना। "ऐ हृदयरमा-मां—प्राणों की पुतली! आओ। तुम हृदय के आसन पर आसीन हो जाओ, मैं तुम्हें दृष्टि को तृप्त करता हुआ देखूं। जन्म से ही मैं तुम्हारा मुंह जोह रहा हूं। ऐ मां, तुम जानती हो, मैं कितना दुःख भोग चुका हूं। ऐ आनन्दमयी एक बार तो हृदयपद्मको विकसित करके वहां अपना प्रकाश दिखा दो।"

नरेन्द्र मन ही मन गा रहे हैं।

गाना। "मां, तेरा अपरूप रूप घोर अँधेरे में चमक रही है। इसी लिये गिरीगुहाओं में योगिजन तुम्हारा ध्यान करते हैं।"

समाधि का यह संगीत सुनते ही सुनते श्रीरामकृष्ण समाधिमग्न हो गये।

श्रीरामकृष्ण को भावावेश है। उत्तरास्य हो, दीवार के सहारे, पैर लटकाये हुए तकिये पर बैठे हुए हैं। चारों ओर भक्त बैठे हैं।

भावावेश में श्रीरामकृष्ण माता से बातें कर रहे हैं। कह रहे हैं— "भोजन करके इस वक्त चला जाऊँगा। तू आई? पोटली बांधकर, कहां रहेगी वह घर ठीक करके तू आई है क्या?

"अब मुझे कोई नहीं सुहाता।"

"मां, गाना क्यों सुनूं? इससे तो मन कुछ बाहर चला जाता है!"

क्रमशः श्रीरामकृष्ण को बहिः संसार का ज्ञान हो रहा है। भक्तों की ओर हेरकर उन्होंने कहा,—"हण्डी में पानी भर कर कोई-मछलियों को उसमें रखते हुए देख पहले मुझे बड़ा आश्चर्य होता था। मैं सोचता था, ये लोग बड़े हत्यारे हैं, अन्त में इन मछलियों को मार डालेंगे। अवस्था जब बदलने लगी, तब मैंने देखा, यह शरीर ऊपर का ढक्कन है। न इसके रहने से कुछ बनता-बिगड़ता है, न जाने से।"

भवनाथ। तो क्या मनुष्यों की हिंसा की जा सकती है? हत्या की जा सकती है?

श्रीरामकृष्ण। हां, उस अवस्था में की जा सकती है। वह अवस्था सबको नहीं होती। वह ब्रह्मज्ञान की अवस्था है।

"दो एक ग्राम उतरने पर भक्ति और भक्त अच्छे लगते हैं।

"ईश्वर में विद्या और अविद्या दोनों हैं। यह विद्या-माया जीव को ईश्वर की ओर ले जाती है, अविद्या-माया ईश्वर से जीव को दूर बहका कर ले जाती है। विद्या की क्रीड़ाएं ज्ञान, भक्ति, दया और वैराग्य हैं। इनका आश्रय लेने पर मनुष्य ईश्वर के पास पहुंच सकता है।

"एक सीढ़ी और चढ़ने पर ईश्वर मिलते हैं—ब्रह्मज्ञान होता है। इस अवस्था में सच्चा ज्ञान होता है—वास्तव में समझ पड़ता है कि मैं ठीक देख रहा हूं, वही सब कुछ हुए हैं। उस समय त्याज्य और ग्राह्य नहीं रहते! किसी पर क्रोध करने की जगह नहीं रहती।

"मैं बग्घीपर चढ़ा चला जा रहा था। एक जगह बरामदे के ऊपर देखा, दो वेश्याएं खड़ी थीं। देखा—साक्षात् भगवती। देखकर मैंने प्रणाम किया।

"जब पहले पहल यह अवस्था हुई तब कालीमाई की न मैं पूजा

कर सका और न उन्हें भोग दे सका। हलधारी और हृदय ने कहा, खजानची कह रहा है—भट्टाचार्यजी भोग नहीं देंगे तो कौन देगा? कटूक्ति की,. यह सुनकर मैं हंसने लगा, मुझे क्रोध नहीं आया। यह ब्रह्मज्ञान प्राप्त करके फिर लीला का स्वाद लेते रहो। कोई साधु एक शहर में तमाशा देखता हुआ घूम रहा था। ऐसे समय एक दूसरे परिचित साधु से भेंट हो गई। उसने पूछा, 'तुम मौज से घूम रहे हो, तुम्हारा सामान कहां है? उधर सामान लेकर कोई नौ दो ग्यारह तो नहीं हो गया?' प्रथम साधु ने कहा, 'नहीं महाराज, पहले डेरे की तलाश करके, डेराडंडी वहां रखकर, ताला बन्द करके शहर का रंग-ढंग देखने के लिये निकला हूं।' (सब हंसते हैं)।

भवनाथ। यह बहुत ऊँची बात है।

मणि (स्वगत)। ब्रह्मज्ञान के बाद लीला का स्वाद लेना,—समाधि के बाद नीचे उतरना!

श्रीरामकृष्ण (मास्टर आदि से) अजी! ब्रह्मज्ञान क्या ऐसे सहज ही हो जाता है? मन का नाश बिना हुए नहीं होता। गुरु ने शिष्य से कहा था, तुम मुझे मन दो, मैं तुम्हें ज्ञान देता हूं। नांगा कहता था, अरे, मन इधर उधर न लगाना चाहिये।

"इस अवस्था में केवल ईश्वर की बातें सुहाती हैं और भक्तों का संग।"

"(राम से) तुम तो डाक्टर हो, जब खून के साथ मिल कर एक हो जाती है, तभी दवा फायदा करती है—है न? उसी तरह इस अवस्था में भीतर और बाहर ईश्वर ही ईश्वर हैं। वह देखेगा, वही देह, मन, प्राण और आत्मा हैं।

"मनका नाश होने ही से ब्रह्मज्ञान की अवस्था होती है। मनका नाश होने ही से 'अहं' का नाश होता है,—उस 'अहं' का जो 'मैं, मैं' कर रहा है। यह अवस्था भक्ति के मार्ग से भी होती है और ज्ञान

मार्ग या विचार-मार्ग से भी। 'नेति-नेति' यानी यह सब माया है, स्वप्नवत् है, इस तरह का विचार ज्ञानी करते हैं। यह संसार 'नेति-नेति माया है। संसार जब न रहा, तब बाकी रह गये कुछ जीव— 'मैं' रूपी घट के भीतर।

"सोचो कि पानी से भरे हुए दस घड़े हैं, उनमें सूर्य का बिम्ब पड़ रहा है। कितने सूर्य दिखलाई देते हैं ?"

भक्त। दस बिम्ब : और एक यथार्थ सूर्य तो है।

श्रीरामकृष्ण। सोचो, तुमने एक घड़ा फोड़ डाला, अब कितने सूर्य देख पड़ते हैं ?

भक्त। नौ, और एक सत्य सूर्य तो है ही।

श्रीरामकृष्ण। नौ घड़े फोड़ डाले गये। अब कितने सूर्य हैं ?

भक्त। एक बिम्ब सूर्य और एक सत्य सूर्य।

श्रीरामकृष्ण (गिरीश से) उस रहे-सहे घट को भी फोड़ डालो, अब क्या रह जाता है ?

गिरिश। जी, वही सत्य सूर्य।

श्रीरामकृष्ण। नहीं, क्या रहता है, वह कोई मुख से नहीं बता सकता। जो है, वही है। प्रतिबिम्बों के बिना रहे, सत्य सूर्य है, यह बात मनुष्य कैसे जान सकता है ? समाधि के होने पर अहं तत्त्व का नाश हो जाता है। समाधिस्थ पुरुष उतर कर कह नहीं सकता कि उसने क्या देखा।

(४)

सन्ध्या हुए बड़ी देर हो गये। बलराम के बैठकखाने में दीये जल रहे हैं। श्रीरामकृष्ण अब भी भावमग्न हैं। भावावेश में कह रहे हैं—

"यहां और कोई नहीं है, इसीलिये तुम लोगों से कह रहा हूं, आन्तरिकता के साथ जो मनुष्य ईश्वर को जानना चाहेगा, उसका

उसेरा अवश्य सफल होगा। जो व्याकुल है, ईश्वर के सिवा और कुछ नहीं चाहता, वही उन्हें अवश्य पावेगा।

"यहां के जितने आदमी हैं—जिन्हें-जिन्हें आना था, वे सब आ चुके। इस समय और जो लोग आनेवाले हैं, वे बाहर के आदमी हैं। वे भी बीच बीच में आया करेंगे। (मां) उनसे कह देंगी, यह करो, इस तरह ईश्वर को पुकारो।

"ईश्वर की ओर मन क्यों नहीं जाता ? ईश्वर से उनमें (महा-माया में) बल अधिक है। जज से उसके चपरासी में शक्ति ज्यादा है।" (सब हंसते हैं)

"नारद से राम ने कहा नारद, तुम्हारी स्तुति से मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है तुम कोई वर लो। नारद ने कहा, राम यह करो, तुम्हारे पाद-पद्मों में मेरी श्रद्धा भक्ति रहे और तुम्हारी भुवन-मोहिनी माया में न पड़ जाऊं। राम ने कहा, तथास्तु, कोई वर और लो। नारद ने कहा, राम और कोई वर मुझे नहीं चाहिये।

इस भुवनमोहिनी माया में सभी मुग्ध हो रहे हैं। जो ईश्वर देह धारण करते हैं, वे भी मुग्ध हो जाते हैं। सीता के लिये राम कितना रोये थे। "पञ्चभूत के पींजड़ेमें पड़कर ब्रह्मको रोना पड़ता है।"

"परन्तु एक बात है—ईश्वर जब चाहें तभी मुक्त हो सकते हैं।"

भवनाथ। Guard (गार्ड) अपनी इच्छासे रेलगाड़ीके भीतर अपनेको कैद करता है। वह जब चाहें तब उतर सकता है।

श्रीरामकृष्ण। ईश्वर कोटि—जैसे अवतार आदि—जब चाहें तब मुक्त हो सकते हैं। जो जीवकोटि हैं, वे नहीं हो सकते। जीव कामिनी और कांचनमें बद्ध हैं। घर के द्वार और झरोखे स्क्रू (Screw) से कसे हुए हैं, कैसे निकल सकते हैं ?

भवनाथ (सहास्य)। जैसे रेलके तीसरे दर्जेके मुसाफिर दरवाजेमें चाभी लगा देने पर फिर नहीं निकल सकते।

गिरीश। जीव अगर इस तरह बंधा हुआ है तो उसके लिये उपाय ?

श्रीरामकृष्ण। गुरुके रूपसे ईश्वर अगर स्वयं ही मायापाशों-का छेदन करें तो फिर भयकी कोई बात नहीं।

तेइसवां परिच्छेद

(१)

श्री रामकृष्ण राम के यहां आये हुए हैं। उनके नीचे के बैठक-खाने में भक्तों साथ बैठे हुए हैं। मुख पर प्रसन्नता झलक रही है। आनन्दपूर्वक भक्तों से बातचीत कर रहे हैं।

आज शनिवार है, जेठ की शुक्ला दशमी, २३ मई १८८५। शाम पांच का वक्त है। श्रीरामकृष्ण के सामने महिमाचरण बैठे हैं। बाईं ओर मास्टर हैं; चारों ओर पल्टू, भवनाथ, नृत्यगोपाल और हरमोहन। आते ही श्रीरामकृष्ण भक्तों की खबर लेने लगे।

श्रीरामकृष्ण (मास्टर से)। छोटा नरेन नहीं आया !

कुछ देर बाद छोटे नरेन आ गये।

श्रीरामकृष्ण। वह नहीं आया ?

मास्टर। जी कौन ?

श्रीरामकृष्ण। किशोरी ?—

गिरीश घोष नहीं आवेगा ?—और नरेन ?

कुछ देर बाद नरेन्द्रने आकर प्रणाम किया।

श्रीरामकृष्ण (भक्तों से)। केदार (चटर्जी) अगर रहता तो खूब आनन्द आता। गिरीश घोष से उसकी खूब बनती है। (महिमा से, सहास्य) वह भी वही बात दुहराता है (यानी अवतार मानता है)

कमरे में किर्तन होनेका बन्दोबस्त कर रक्खा गया है। कीर्तनिया हाथ जोड़कर श्रीरामकृष्ण से कह रहा है, आप आज्ञा कीजिये तो कीर्तन हो।

श्रीरामकृष्ण ने कहा, थोड़ासा पानी पियूंगा।

पानी पीकर मसाले की थैली से आपने कुछ मसाला निकाल कर खाया। मास्टर से थैली बन्द करने के लिये कहा।

कीर्तन हो रहा है। खोल की आवाज से श्रीरामकृष्ण को भावा-वेश हो रहा है। गौरचन्द्रिका सुनते ही सुनते आप समाधिमग्न हो गये। पास नृत्यगोपाल थे, उसकी गोद पर श्रीरामकृष्ण ने अपने पैर फैला दिये। नृत्यगोपाल भी भावावेश में रो रहे हैं। भक्तगण चुपचाप यह समाधि की अवस्था देख रहे हैं।

कुछ प्रकृतिस्थ होकर श्रीरामकृष्ण वार्तालाप करने लगे।

श्रीरामकृष्ण। नित्य से लीला और लीला से नित्य। (नृत्य-गोपाल से) तेरा क्या भाव है ?

नृत्यगोपाल। दोनों अच्छे हैं।

श्रीरामकृष्ण आंखें बन्द करके कह रहे हैं,—केवल इस तरह रहना क्या है। क्या आंखें बन्द करलेने पर वे है और आंखें खोलने पर वे नहीं हैं ? जिनकी नित्यता है, लीला भी उन्हीं की है; जिनकी लीला है, उन्हींकी नित्यता है।

"(महिमा से) अजी, तुम्हें एक बार बतलाना—

महिमाचरण। जी, दोनों ईश्वर की इच्छाएं हैं।

श्रीरामकृष्ण। कोई सात तल्ले के ऊपर चढ़कर फिर उतर नहीं सकता, और कोई ऊपर चढ़कर नीचे उतरकर घूमफिर सकता है।

"उद्धव ने गोपियों से कहा था, तुम जिन्हें अपना कृष्ण बना रही हो, वे सर्वभूतों में हैं, वही जीव-जगत हुए हैं।"

"इसी लिये कहता हूं, क्या आंखें बन्द करने से ही ध्यान होता है और आंखें खोलने से कुछ नहीं ?"

महिमा। एक प्रश्न है। जो भक्त हैं उन्हें भी किसी समय निर्वाण की आवश्यकता है ?

श्रीरामकृष्ण। निर्वाण चाहिये ही ऐसी कोई बात नहीं। इस तरह भी है कि, कृष्ण भी नित्य हैं और भक्त भी नित्य हैं—चिन्मय श्याम,—चिन्मय धाम।

जैसे जहां चन्द्र है, वहीं तारे भी हैं। कृष्ण भी नित्य हैं और भक्त भी नित्य हैं। तुम्हीं तो कहते हो—'अन्तर्बहिर्यदि हरि स्तपसा ततः किम्'—और तुमसे तो मैंने कहा है कि विष्णु का अंश रहनेपर भक्ति का बीज नहीं जाता। मैं एक ज्ञानी के पंजे में फंस गया, उसने ग्यारह महीने तक वेदान्त सुनाया। परन्तु भक्ति का बीज नष्ट हुआ ही नहीं। घूम फिर कर वही 'मां-मां'! जब मैं गाता था तब नंगा रोने लगता था। कहता था—अरे, यह क्या तूने सुनाया! देखो, इतना बड़ा ज्ञानी भी रोने लगता था। (छोटे नरेन्द्र आदि से) इतना समझ रखना, अलख लता का जल जब पेट में जाता है तो पेड़ होता ही है। भक्ति का बीज अगर पड़ गया तो उससे क्रमशः पेड़ और फूल-फल होते ही हैं।

'मूषलं कुलनाशनम्।' मूषल घिसकर जरासा रह गया था। उस थोड़े से अंश से यदुवंश का ध्वंस हो गया था। चाहे लाख ज्ञान और विचार करो, भक्ति का बीज अगर भीतर रहा, घूमफिर कर वही 'भज राम—भज सीताराम।'

भक्तगण चुपचाप सुन रहे हैं। श्रीरामकृष्ण हंसते हुए महिमाचरण से कह रहे हैं—आपको क्या अच्छा लगता है?

महिमाचरण (हंसकर)। कुछ भी नहीं, आम अच्छा लगता है।

श्रीरामकृष्ण (सहास्य)। एकेले एकेले? न, आप भी खाओगे और दूसरों को भी कुछ दोगे?

महिमा (सहास्य)। देने की विशेष इच्छा तो नहीं है, अकेले खाया तो बुरा क्या है?

श्रीरामकृष्ण। परन्तु मेरा भाव क्या है, जानते हो?—क्या आंख खोलने ही से वे गायब हो जाते हैं? मैं नित्यता और लीला दोनों को लेता हूं। उन्हें प्राप्त करने पर यह समझ में आ जाता है कि वही स्वराट हैं और वही विराट हैं। वही अखण्ड सच्चिदानन्द हैं और वही जीव-जगत हुए हैं।

"साधना चाहिये। केवल शास्त्र रटने से नहीं होता। मैंने विद्यासागर को देखा, वह पढ़े लिखे खूब है, परन्तु उसके अन्तर में क्या है उसने नहीं देखा। बच्चों को पढ़ा लिखाकर ही उसे आनन्द मिलता है। ईश्वर के आनन्द का स्वाद उसने नहीं पाया, केवल पढ़ने से क्या होगा? धारणा कहां? पंचांग में लिखा है बारिश पूरी होगी परन्तु पचांग दबाओ तो कहीं बूंदभर भी पानी नहीं निकलता।

महिमा। संसार में कितने ही काम हैं, अवसर कहां मिलता है?

श्रीरामकृष्ण। क्यों? तुम तो सब स्वप्नवत बतलाते हो।

"सामने सागर देखकर लक्ष्मण ने धनुष लेकर कहा था, मैं वरुण का बध करूंगा। यही समुद्र हमें लंका नहीं जाने दे रहा। राम ने समझाया,—'लक्ष्मण, यह जो सब देख रहे हो, यह स्वप्नवत अनित्य है न?—अतएव समुद्र भी अनित्य है और तुम्हारा क्रोध भी अनित्य है। मिथ्या को मिथ्या के द्वारा मारना भी मिथ्या है।"

महिमाचरण चुप हो रहे।

महिमाचरणको पारिवारिक बहुत से काम करने पड़ते हैं। और उन्होंने परोपकार के लिये एक नया स्कूल खोला है।

श्रीरामकृष्ण (महिमा से)। शंभू ने कहा, मेरी इच्छा है, ये रुपये सत्कार्य में लगाऊं—स्कूल, दवाखाना खोल दूं, रास्ता-घाट तैयार करा दूं।' मैंने कहा, 'निष्काम भाव से कर सको तो अच्छा है, परन्तु निष्काम कर्म करना बड़ा कठिन है, न जाने किस तरफ से कामना निकल पड़ती है। तुमसे एक बात और पूछता हूं, अगर

ईश्वर तुम्हें मिल जायं तो क्या तुम उनसे कुछ स्कूल, अस्पताल, दवाखाने ये सब मांगने लगोगे ?

एक भक्त। महाशय, संसारियों के लिये क्या उपाय है ?

श्रीरामकृष्ण। साधुसंग—ईश्वर की बातें सुनना।

"संसारी मतवाले हो रहे हैं, कामिनी और कांचन में मत्त हैं। मतवाले को पानी थोड़ा-थोड़ासा पिलाते रहने पर वह अच्छा हो जाता है—उसे होश आता है।

"और सद्गुरु के पास उपदेश लेना चाहिये। सद्गुरु के लक्षण हैं। जो काशी गया हो और काशी जिसने देखी हो, उसीसे काशी की बातें सुननी चाहिये। केवल पंडित होने से नहीं होता। जिसे यह बोध नहीं हुआ कि संसार अनित्य है, उससे उपदेश न लेना चाहिये। पंडित में विवेक और वैराग्य के रहने पर ही वह उपदेश दे सकता है।

"सामाध्यायी ने कहा था, ईश्वर नीरस है। जो रसस्वरूप है, उन्हें बतलाता था नीरस! जैसा किसीने कहा था—मेरे मामा के यहां गोशाले में बहुत घोड़े हैं!" (सब हंसते हैं)।

"संसारी मतवाले हो रहे हैं। वे सदा सोचते हैं, मैं ही यह सब कर रहा हूं, और घर-द्वार यह सब मेरा है। दांत निकालकर कहता है—'इनके (स्त्री आदि के) लिये फिर क्या होगा ?' 'मैं' न रहूंगा तो इनके दिन कैसे कटेंगे। 'मेरी' स्त्री को और मेरे परिवार को कौन संभालेगा ? राखाल ने कहा, मेरी स्त्री की फिर क्या दशा होगी ?"

हरमोहन। राखाल ने ऐसी बात कही ?

श्रीरामकृष्ण। इस तरह नहीं कहेगा तो क्या करेगा ? जिसे ज्ञान है, उसे अज्ञान भी है। लक्ष्मण ने राम से कहा, भाई! बड़े आश्चर्य की बात है साक्षात् वशिष्ठ देव भी पुत्रों के शोक से विकल हो रहे हैं! राम ने कहा, भाई, जिसे ज्ञान है, उसे अज्ञान भी है, भाई! ज्ञान और अज्ञान के पार हो जाओ।

"जैसे किसीके पैर में एक कांटा लगा है। वह उस कांटे को निकालने के लिये एक और कांटा ले आता है। फिर उस कांटे से कांटा निकालकर दोनों कांटे फेंक देता है। अज्ञान-कांटे को निकालने के लिये ज्ञान-कांटे की जरूरत होती है। फिर ज्ञान और अज्ञान दोनों कांटों को फेंक देने पर जो कुछ रह जाता है वह विज्ञान है। ईश्वर है, इसका आभासमात्र लेकर उन्हें अच्छी तरह जानना पड़ता है, और उनसे खास तौर से बातचीत की जाती है, विज्ञान यह है। इसीलिये श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा है, भाई, तीनों गुणों से पार हो जाओ।

"इस विज्ञान को प्राप्त करने के लिये विद्यामाया को अपनाना पड़ता है। ईश्वर सत्य हैं, संसार अनित्य है, यह विचार है, यानी विवेक और वैराग्य है। और उनके नामों और गुणों का कीर्तन, ध्यान, साधु सङ्ग, प्रार्थना यही विद्यामाया के दायरे के अन्दर कहलाते हैं। विद्यामाया जैसे छत की ऊपरवाली कुछ सीढ़ियां हैं और एक सीढ़ी उठने ही से छत है। (छत में उठने का अर्थ है ईश्वर लाभ।)

"विषयी लोग मतवाले हो रहे हैं। कामिनी और कांचन में मत्त हैं, होश नहीं। इसी लिये तो छोकड़ों को मैं प्यार करता हूं। उन में कामिनी—कांचन का प्रवेश कभी नहीं हुआ। आधार अच्छा है, ईश्वर के पास पहुंच सकते हैं। संसारियों में कांटे चुनते ही चुनते सब साफ हो जाता है—मछली नहीं मिलती।

जैसे पत्थर की चोट खाया आम गङ्गाजल से धो लेना पड़ता है। श्रीठाकुर जी की सेवा में प्रायः आता ही नहीं। ब्रह्मज्ञान करके कहीं काटा जाता है, अर्थात् वही सब कुछ हुए हैं, इस तरह मन को समझा कर।

श्रीयुत अश्विनी कुमार दत्त और श्रीयुत विहारी भादुड़ी के पुत्र के साथ एक थीयोसफिस्ट आये हुए हैं। मुखर्जियों ने आकर

श्रीरामकृष्ण को प्रणाम किया। आंगन में संकीर्तन का आयोजन हो रहा है। ज्यों ही खोल बजा, श्रीरामकृष्ण घर छोड़ कर आंगन में जा बैठे। साथ-साथ भक्तगण भी उठ गये।

भवनाथ अश्विनी का परिचय दे रहे हैं। श्रीरामकृष्ण ने अश्विनी की ओर इशारा करके मास्टर से कुछ कहा। मास्टर और अश्विनी में कुछ बातें होने लगीं। नरेन्द्र भी आंगन में आये। श्रीरामकृष्ण अश्विनी से कह रहे हैं इसी का नाम नरेन्द्र है।

— ०० —

'विचित्र उलझन'

(रचयिता—श्रीयुत ठाकुर उच्चेश्वर प्रसाद सिंह 'ईश्वर')

———

कोई बतलाता यह आत्मा असीम अज,
कोई बतलाता भेद वेदहूँ न पाता है!
कोई बतलाता हम मर मर होते जमा,
सबको जिलाने खुदा एक दिन आता है!!
कोई बतलाता खूब खाओ पीओ मौज करो,
बार-बार जन्म ले। कौन यहां आता है?
'ईश्वर' 'विचित्र उलझन' में पड़ा है जग,
बुद्धि काम देती नहिं, माथा चकराता है!!

———

परिव्राजक।

(स्वामी विवेकानन्द)

(गतांक से आगे)

मादाम मेलवा, मादाम एमा एमस, आदि सब प्रसिद्ध गायिकाएं हैं। जांदरेज प्लासँ आदि सब बहुत मशहूर गवैये हैं—ये सभी दो तीन लाख रुपये साल में पैदा करते हैं!—लेकिन काल्मे में विद्या के साथ-साथ एक नई प्रतिभा है। असाधारण रूप यौवन, प्रतिभा और देवी कण्ठ—यह सब एकत्र मिलकर काल्मे को गायिकामण्डली में शीर्ष स्थान पर पहुंचा रहा है। परन्तु दुःख-दारिद्र से बढ़ कर दूसरा शिक्षक और नहीं! वह शैशव का अति कठिन दारिद्र, दुःख-कष्ट—जिसके साथ दिन रात लड़ाई कर काल्मे को यह विजय मिली है, उस संग्राम ने उनके जीवन में एक अपूर्व सहानुभूति, एक गम्भीर भाव ला दिया है। फिर इस देश में जैसा उद्योग है, वैसे ही उपाय भी हैं। हमारे देश में उद्योग रहने पर भी उपाय का बिलकुल ही अभाव है। बङ्गाली की लड़कियों में विद्या सीखने की समधिक इच्छा रहने पर भी उपाय के अभाव से विफल हो जाती हैं;—बंग-भाषा में सीखने लायक है भी क्या? बड़े जोर सड़े नावेल और नाटक! फिर विदेशी भाषा में या संस्कृत भाषा में अटकी हुई विद्या, दो ही चार लोगों के लिये है। इन सब देशों में अपनी भाषा में असंख्यों पुस्तकें हैं। इस पर जब जिस भाषा में एक नया कुछ निकल रहा है, उसी वक्त उसका अनुवाद कर साधारण लोगों के सामने उसे हाजिर करते जा रहे हैं।

मस्ये जुल बोआ प्रसिद्ध लेखक हैं; सब धर्मों, सब कुसंस्कारों, सब ऐतिहासिक तत्वों के आविष्कार में विशेष पटु हैं। मध्ययुग में

योरप में जो सब शैतान-पूजा, जादू, मारण, उच्चाटन, झाड़-फूंक मन्त्र तन्त्र थे और अब भी जो कुछ है, वह सब इतिहास, लिपि-बद्ध करके इन्होंने एक प्रसिद्ध पुस्तक तैयार की है। ये सुकवि हैं और विक्टर ह्यूगो, ला मार्टिन आदि फरासीसी महाकवि और गेटे, सिलर आदि जर्मन महाकवियों के भीतर भारतवर्ष के जो वेदान्त भाव प्रवेश किये हैं, उन सब भावों के पोषक हैं। वेदान्त की प्रभाव योरप के काव्य और दर्शन-शास्त्र में बहुत है। अच्छे कविमात्र वेदान्ती हैं। दार्शनिक तत्व लिखने चले कि घूम फिर कर वेदान्त। परन्तु हां, कोई कोई स्वीकार नहीं करना चाहते। अपनी मौलिकता बहाल रखना चाहते हैं—जैसे हार्बर्ट स्पेन्सर आदि। परन्तु अधिकांश लोग साफ स्वीकार करते हैं। और बिना किये जायं भी कहां—इस तार, रेलवे और अखबारों के जमाने में। बड़े निरभिमानी और शान्त-प्रकृति और साधारण अवस्था के आदमी होने पर भी इन्होंने बड़ी खातिर से पेरिस में मुझे अपने मकान पर रखा था। इस समय एक ही साथ भ्रमण के लिये चले हैं।

कन्स्टान्टिनोपल तक रास्ते के साथी एक और दम्पत्ति हैं—पेयर हियासान्थ और उनकी सहधर्मिणी। पेयर, अर्थात् पिता हियासान्थ थे—कैथलिक सम्प्रदाय के एक कठोर तपस्वी-शाखा के सन्यासी। पाण्डित्य और असाधारण वाग्मिता-गुण तथा तपस्या के प्रभाव से, फरासीसी मुल्कों में और समग्र कैथलिक सम्प्रदायों में, इनकी विशेष प्रतिष्ठा थी। महाकवि विक्टर ह्यूगो दो आदमियों की फ्रेंच की तारीफ करते थे—उनमें पेयर हियासान्थ एक आदमी हैं। चालीस वर्ष की उम्र होने पर पेयर हियासान्थ ने एक अमेरिकन नारी के प्रेमपाश में बंध कर उससे विवाह कर डाला।—बड़ा शोरगुल मचा,—अवश्य कैथलिक समाज ने उनका त्याग किया। नंगे पैर, अलखल्ला पहना हुआ तपस्वी वेश छोड़ कर, पेयर हियासान्थ

गृहस्थों का हैट-कोट-बूट पहन कर हुए—मस्ये लायजन। मैं लेकिन उन्हें उनके पहले नाम से ही पुकारता हूं—वह बहुत दिनों की बात हुई, योरप-प्रसिद्ध हलचल था! प्रोटेस्टान्टों ने उन्हें बड़े आदर से ग्रहण किया, कैथेलिक लोग घृणा करने लगे। पोप ने उनके गुणों के आदर कर उन्हें त्याग करना नहीं चाहा, कहा कि "तुम ग्रीक कैथलिक पादरी होकर रहो, (उस शाखा के पादरी एक ही बार ब्याह करने पाते हैं, परन्तु बड़ा पद नहीं पाते) परन्तु रोमन चर्च त्याग न करो।" लेकिन लायजन-गेहिनी उन्हें खींच-खांच कर पोप के मकान से निकाला। क्रमशः पुत्र-पौत्र हुए; अब अति स्थविर लायजन जेरूसलेम चले हैं—ईसाई और मुसलमानों में जिस से सद्भाव हो, इस प्रचेष्टा में। उनकी गेहिनी ने शायद बड़े-बड़े स्वप्न देखे थे कि लायजन कहीं दूसरा मार्टिन लूथार होगा, पोप का सिंहासन कहीं उलट कर भूमध्य सागर में फेंक न दे। वह तो सब कुछ भी नहीं हुआ; हुआ—फरासीसी जैसा कहते हैं, "इतोनष्टस्ततो भ्रष्टः"। लेकिन मादाम लायजन के अनेक प्रकार के दिवा-स्वप्न चल रहे हैं! वृद्ध लायजन बड़े मधुर भाषी, नम्र और भक्त प्रकृति के आदमी हैं। मेरे साथ मुलाकात होते ही कितनी बातें, अनेक धर्मों की, अनेक मतों की हुईं। परन्तु भक्त आदमी, अद्वैत वाद से कुछ डरा हुआ है। गृहिणी का भाव शायद मेरे ऊपर कुछ विरूप है। वृद्ध के साथ जब मेरी त्याग, वैराग्य और सन्यास की चर्चा होती है, स्थविर के प्राणों में वह चिरकाल का भाव जाग उठता है और गृहिणी को शायद उस वक्त नसें तर्राती हैं। इस पर औरत-मर्द सब फरासीसी जितना कसूर सब गृहणी पर थोपते हैं, कहते हैं, "इस औरत ने हमारे एक महा-तपस्वी साधू को नष्ट कर डाला है।" गृहिणी के लिये कुछ विपत्ति तो है न?—फिर रहना पेरिस में, कैथलिकों के देश में। ब्याहे हुए पादरी को देख कर वे लोग घृणा करते हैं। औरत-बच्चे लेकर धर्म-

प्रचार—यह कैथलिक बिलकुल नहीं सह सकता। गृहिणी में फिर कुछ कर्कशा के लक्षण भी हैं न? एक बार गृहिणी ने किसी अभिनेत्री पर घृणा-प्रकाश कर के कहा, "तुम विवाह बिना किये हुये फलां के साथ रहती हो, तुम बड़ी खराब औरत हो।" उस अभिनेत्री ने झट जवाब दिया कि मैं तुम से लाखबार अच्छी हूं। मैं एक साधारण आदमी के साथ रहती हूं और कानून के अनुसार विवाह नहीं किया तो नहीं सही; और तुम ने तो महापाप किया है—इतने बड़े एक साधु का धर्म नष्ट कर दिया। यदि तुम्हारे प्रेम की ऐसी ही लहर उठी थी तो साधु की सेवादासी ही बन कर रहतीं; उस से ब्याह कर, गृहस्थ बना उसे नष्ट क्यों कर दिया? सड़ा कोहंड़ा शरीर को कथा देश में सुन कर हंसता था, उनका एक दूसरी तरफ से अर्थ होता है,—देखा?

खैर, मैं सब सुनता हूं और चुप रहता हूं। कुछ हो, वृद्ध पेयर हियासान्थ बड़े प्रेमी हैं और शान्त; वह प्रसन्न हैं अपने स्त्री-पुत्र लेकर,—देशभर के आदमीयों को क्या? हां, गृहिणी जरा शान्त रहे तो शायद सब मिट जाय। लेकिन बात क्या है, समझे भाईसाहब, मैं देख रहा हूं कि, पुरुष और स्त्रियों में सब देशों में समझने की, विचार करने की राह अलग है। पुरुष एक तरफ से समझायें, स्त्रियां एक दूसरी तरफ से। पुरुषों की युक्ति एक तरह की है और स्त्रियों की युक्ति एक दूसरी तरह की। पुरुष स्त्री को माफ करते हैं और दोष पुरुष के सर पर लादते हैं; स्त्रियां पुरुष को माफ करती हैं और सब दोष स्त्री पर रखती हैं।

इसके साथ हमारा विशेष लाभ यह है कि उसी एक अमेरिकन को छोड़कर ये लोग कोई अंग्रेजी नहीं जानते। अंग्रेजी भाषा में बातचीत बिलकुल बन्द है। लेहाजा किसी तरह मुझे कहनी और सुननी पड़ रही है, फ्रेंच।

पेरिस नगरी से मित्रवर मैक्सिम ने अनेक स्थानों के पत्र आदि इकट्ठे कर दिये हैं जिससे सब देश यथार्थ रूप से देखे जा सकें। मैक्सिम प्रसिद्ध मैक्सिमगन के निर्माता हैं। जिस तोप से लगातार गोले चलते रहते हैं, आप ठस जाते, आप छूटते, जिसका विराम नहीं। मैक्सिम पहले के अमेरिकन हैं, अब इंग्लैंड में रहते हैं, तोपों के कारखाने आदि हैं। मैक्सिम, तोपों की बातें ज्यादा करने पर चिढ़ता है, कहता है, "महाशय मैंने क्या और कुछ भी नहीं किया; इस आदमी मारनेवाले कल को छोड़ कर?" मैक्सिम चीन भक्त है, भारत-भक्त है, धर्म और दर्शनादि का सुलेखक है। मेरी पुस्तकें पढ़कर बहुत दिनों से मुझपर अनुराग रखता है—निहायत अनुराग। और मैक्सिम राजे-रजवाड़ों को तोप बेचता है, सब देशों में जान पहचान है, लेकिन उसके घनिष्ठ मित्र हैं ली हुं चांग, विशेष श्रद्धा चीनपर है, धर्मानुराग कंफुचे मत पर है। चीनी नाम से कभी कभी अखबारों में क्रिस्तान पादियों के विरुद्ध लिखता है—ये लोग चीन क्या करने जाते हैं, क्यों जाते हैं, इत्यादि;—मैक्सिम, पादियों का चीन में धर्म-प्रचार बिलकुल नहीं सह सकता। मैक्सिम की गृहणी भी ठीक वैसी ही है, चीन-भक्ति और क्रिस्तानी-घृणा। लड़के-वाले नहीं हैं, वृद्ध आदमी, अगाध धन है।

यात्रा का निश्चय हुआ,—पैरिस से रेल द्वारा वियेना, इसके बाद कान्स्टान्टिनोपल्स, इसके बाद जहाज द्वारा एथेन्स, ग्रीस, इसके बाद भूमध्यसागर पार इजिप्त, इसके बाद एसिया-माईनर, जेरूजलेम, आदि आदि। "ओरीएन्टाल एक्सप्रेस ट्रेन" पेरिस से इस्ताम्बोल तक रोज दौड़ती है। उसमें अमेरिका की नकल पर सोने, बैठने, खाने की जगह है। ठीक अमेरिका की गाड़ी की तरह सुसंपन्न न होने पर भी बहुत कुछ उसी तरह है। उस गाड़ी पर चढ़कर २४ अक्तूबर पेरिस छोड़ना पड़ रहा है।

आज २३ अक्तूबर है। कल सन्ध्यासमय पेरिस से विदा हूंगा।

इस साल यह पेरिस सभ्य संसार का एक केन्द्र हो रहा है, इस साल महाप्रदर्शनी है। अनेक दिशाओं और देशों से समागत सज्जनों का संगम है। देश-देशान्तरों में मनीषीगण अपनी-अपनी प्रतिभा के प्रकाश से अपने देश की महिमा विस्तार कर रहे हैं, आज इस पेरिस में। इस महाकेन्द्र की भेरी-ध्वनि आज जिनका नामोच्चारण करेगी, वह नाद-तरंग साथ ही साथ उनके स्वदेश को सर्वजन समक्ष गौरवान्वित कर देगी। और मेरी जन्मभूमि—यह जर्मन, फरासीसी, अंगरेज, इटाली आदि बुधमंडली-मंडित महाराजधानी में तुम कहां हो वंगभूमि? कौन तुम्हारा नाम लेता है? कौन तुम्हारे अस्तित्व की घोषणा करता है? उन अनेक गौरांग प्रतिभा मण्डली के भीतरसे वंगभूमि—हमारी मातृभूमि के एक यशस्वी वीर युवा ने अपने नाम की घोषणा की,—वह वीर संसार-प्रसिद्ध वैज्ञानिक डाक्टर जे० सी० बोस हैं! अकेले, युवा बंगाली वैद्युतिक ने, आज विद्युत् वेग से पाश्चात्य मंडली को अपनी प्रतिभा से मुग्ध कर दिया—वह विद्युत् संचार, मातृभूमि के मृत प्रायः शरीर में नवजीवन का तरंग-संचार कर दिया। सम्पूर्ण वैद्युतिक-मण्डली का शीर्ष स्थानीय हैं आज जगदीश वसु—भारतवासी, बंगवासी! धन्य है वीर! वसु और उनकी सती, साध्वी, सर्वगुण सम्पन्ना गेहिनी जिस देश में जाते हैं, वहीं भारत का मुख उज्ज्वल कर देते हैं—बंगालियों का गौरव बढ़ाते हैं। धन्य दम्पति!

और मिस्टर लेगेट ने प्रभूत अर्थ व्यय कर अपने पेरिसवाले प्रासाद में भोजन आदि की व्यवस्था के साथ ही साथ नित्य नाना यशस्वी यशस्विनी नर-नारियों का समागम सिद्ध किया है, उसकी आज समाप्ति होगी।

कवि, दार्शनिक, वैज्ञानिक, नैतिक, सामाजिक, गायक, गायिका, शिक्षक, शिक्षयित्री, चित्रकर, शिल्पी, भास्कर, वादक—आदि नाना जाति के गुणियों का समावेश मिस्टर लेगेट के आतिथ्य-समादर के आकर्षण से उनके घर में ही हुआ! वह पर्वत-निर्झरवत् वाक्-छटा, अग्नि-स्फुलिंगवत् चतुर्दिक समुत्थित भावविकाश, सम्मोहन संगीत, मनीषि-मनः-संघर्ष-समुत्थित—चिन्तामंत्र प्रवाह, सब के देशकाल का ज्ञान रहितकर मुग्ध कर रखता था!—उसकी भी समाप्ति हुई।

सब वस्तुओं का अन्त है। आज एक वार और पुंजीकृत-भावरूप-स्थिर-सौदामिनी, यह अपूर्व-भूस्वर्ग-समावेश पेरिस-एक्जिबिशन देख आया।

आज दो दिन से पेरिस में लगातार बारिश हो रही है। फ्रांस के प्रति सदा ही सदय सूर्यदेव आज कै रोज से विरूप हैं। नाना दिग्देशागत शिल्प, शिल्पी, विद्या और विद्वानों के पीछे गूढ़ भाव से प्रवाहित इन्द्रिय-विलास देख कर सूर्यदेव के मुखमण्डल मेघ-कलुषित हो गया है; अथवा काष्ठ, वस्त्र और नाना रागरंजित इस माया अमरावती का आशु विनाश सोचकर उन्हों ने दुःख से मेघावगुण्ठन में मुख छिपा लिया है।

हमलोग भी अब भगे तो जान बचे। एक्जिबिशन का टूटना एक बृहत् व्यापार है। यही भूस्वर्ग, नन्दनोपम पेरिस के रास्ते, घुटने भर कीच, चून और बालू से भर आयंगे। दो एक बड़ों को छोड़ कर, एक्जिबिशन के सभी घरद्वार; काठकूट, चीथड़ों और चूनाकारी का ही खेल तो है—जैसे यह कुल संसार! यह सब जब टूटता रहता है, चून के किनके उड़ कर दमशोक देते हैं, बालू और चीथड़ों से रास्ते मैले और कदर्य बन जाते हैं; इस पर पानी बरसा कि मामला घन घोर हो गया!

२४ अक्टूबर सन्ध्या समय गाड़ी ने पेरिस छोड़ा। अन्धकार रात्रि—देखने का कुछ भी नहीं। मैं और मस्ये बोआ एक कमरे में जल्द ही लेट गये। नींद से जगकर देखता हूं,—हमलोग फ्रान्स

को सीमा छोड़ कर जर्मन-साम्राज्य में आ पहुंचे हैं। जर्मनी पहले अच्छी तरह देखा हुआ है; लेकिन फ्रान्स के बाद जर्मनी है—बड़ा ही प्रतिद्वन्दी भाव है। "यात्येकतोऽस्तशिखरं पतिरोषधीनां"—एक ओर भुवन-स्पर्शी फ्रांस, प्रतिहिंसा की आग से जलता हुआ खाक हो जा रहा है, और एक तरफ केन्द्रीकृत नूतन महाबल जर्मनी महावेग से उदय शिखराभिमुख चला जा रहा है। कृष्णकेश, कुछ खर्वकाय, शिल्पप्राण, विलासप्रिय, अति-सुसभ्य फरासीसियों का शिल्प-विन्यास और एक तरफ हिरण्यकेश, दीर्घाकार, दिङ्नाग जर्मनी का स्थूल हस्तावलेप। पेरिस के बाद पाश्चात्य-संसार में और दूसरा नगर नहीं है; सब उसी पेरिस की नकल है, कम से कम चेष्टा। फरासीसियों में उस शिल्प-सुषमा का सूक्ष्म सौन्दर्य है। जर्मन, अंगरेज अमेरिकन में वह अनुकरण स्थूल है। फरासीसियों का बल-विन्यास भी जैसे रूपपूर्ण हो, जर्मनों की रूप-विकास-चेष्टा भी भयानक है। फ्रेंच प्रतिमा का मुखमण्डल क्रोधाक्त होने पर भी सुन्दर है; जर्मन-प्रतिभा का मधुर हास्य-मण्डित मुख भी जैसे भयंकर है। फ्रेंच सभ्यता स्नायुमयी है, कपूर की तरह, कस्तूरी की तरह, क्षणभर में उड़ कर घर-द्वार भर देती है; जर्मन सभ्यता पेशीमयी है, सीसे की तरह, पारे की तरह वजनदार, जहां पड़ी है, वहां पड़ी ही है। जर्मनों की मांसपेशियां लगातार अश्रान्त भाव से ठकठक हथौड़ी जिन्दगी भर मार सकती हैं; फरासीसियों की देह नरम है औरतों की तरह; किन्तु जब केन्द्रीभूत होकर घाव मारती है, वह लोहार की तरह होता है, उसकी चोट सहना बड़ा ही कठिन है।

जर्मन फरासीसियों की नकल कर बड़ी बड़ी इमारतें उठा रहे हैं, बड़ी बड़ी मूर्तियां, अश्वारोही, रथी, उन प्रसाद-शिखरों पर स्थापित कर रहे हैं, लेकिन जर्मनों के दुतल्ले मकान देखने पर पूछने की इच्छा होती है,—यह मकान क्या आदमियों के रहने के लिये है या

हाथियों और ऊँटों का तबेला है? और फरासीसियों का पंचतला हाथी-घोड़ों का मकान देखकर भ्रम होता है कि इस मकान में शायद परियां रहती होंगी।

अमेरिका जर्मन प्रवाह से अनुप्राणित है। लाखों जर्मन हर शहर में रहते हैं। भाषा अंग्रेजी होने से क्या हुआ, अमेरिका धीरे-धीरे जर्मन रूप में बदल रही है। आज जर्मनी योरप का आदेशदाता है, सबके ऊपर, दूसरी जातियों के बहुत पहले जर्मनी ने प्रत्येक नरनारी को राजदण्ड का भय दिखाकर विद्या सिखलाई है—आज उस वृक्ष का फल भोजन कर रहा है, जर्मनी की सेना प्रतिष्ठा में सर्वश्रेष्ठ है। जर्मनी ने जान लड़ा दी है युद्धपोतों में भी सर्वश्रेष्ठ पद अधिकृत करने के लिये। जर्मनी ने पण्य-निर्माण में अंग्रेजों को भी परास्त कर दिया है। अंग्रेजों के उपनिवेशों में भी जर्मन-पण्य, जर्मन-मनुष्य, धीरे-धीरे एकाधिपत्य लाभ कर रहे हैं। जर्मनी के सम्राट की आज्ञा से सब जातियों ने चीन के क्षेत्र में सर झुका जर्मन सेनापति की अधीनता स्वीकार की थी!

दिनभर गाड़ी जर्मनी के भीतर से चलती रही; तीसरे पहर जर्मन आधिपत्य के प्राचीन केन्द्र, अब परराज्य, आस्ट्रिया की सीमा में पहुंची। इस योरप में घूमने की कुछ चीजों पर निहायत शुल्क है; अन्यत्र कोई कोई पण्य, सरकार के ही एकाधिकार में है; जैसे तम्बाकू। फिर रूस और तुर्की में तुम्हारे राजा की छूट बिना रहे प्रवेश बिलकुल निषिद्ध है; छूट अर्थात् पासपोर्ट निहायत जरूरी है। इसके अलावा रूस और तुर्की तुम्हारी किताबें, कागज-पत्र सब छीन लेंगे; इसके बाद वे लोग देखभाल कर अगर समझें कि तुम्हारे पास तुर्की या रूस के राज्य तथा धर्म के विपक्ष कोई किताब या कागज नहीं है तो वह सब उस वक्त वापस कर देंगे—नहीं तो वे सब किताबें और पत्र जब्त कर लेंगे। दूसरे दूसरे देशों में खाक इस तम्बाकू का

हंगामा बड़ा हंगामा है। सन्दूक, पिटारा, गठरी, सब खोलकर दिखाना होगा कि तम्बाकू है या नहीं। और कान्स्टान्टिनोपल आने पर, दो बड़े, जर्मनी और आस्ट्रिया, और कई खुदरो देशों से गुजरना पड़ता है;—ये खुदरो सब तुरस्क के परगने थे, अब स्वाधीन क्रिस्तान राजों ने एकत्र होकर मुसलमानों के हाथ से, जितने हो सके हैं, क्रिस्तानोंवाले परगने छीन लिये हैं, इन खुदरो चींटियों की काट बड़ों से भी बहुत ज्यादा है।

२५ अक्तूबर सन्ध्या के बाद ट्रेन आस्ट्रिया की राजधानी वियेना नगरी में पहुंची। आस्ट्रिया और रूसके राजवंश के नर-नारियों को आर्क-ड्यूक और आर्क-डचेस कहते है, इस गाड़ी से दो आर्क-ड्यूक गाड़ी से उतरेंगे; उनके बिना उतरे हुए दूसरे यात्रियों को अब उतरने का अधिकार नहीं है। हमलोग प्रतीक्षा करते रहे। अनेक प्रकार की जरी-बूटेदार वर्दी पहने हुए कुछ सैनिक लोग और पर लगी हुई टोपी लगाये कुछ सैन्य आर्क-ड्यूक के लिये प्रतीक्षा कर रहे थे। उन लोगों में घिर कर आर्क-ड्यूक दोनों उतर गये। हमलोग भी बचे—चटपट उतरकर सन्दुक-बस्ते पास कराने का उद्योग करने लगे। यात्री बहुत कम थे; सन्दूक-बस्ता दिखाकर पास कराने में ज्यादा देर नहीं लगी। पहले से एक होटल का पता लगाया हुआ था, उसका आदमी गाड़ी लेकर प्रतीक्षा कर रहा था। हमलोग भी यथा समय होटल में हाजिर हो गये। उस रात को और देखना-भालना क्या होता ?—दूसरे दिन प्रातःकाल शहर देखने निकले। सभी होटलों में और योरप के इंग्लैण्ड और जर्मनी को छोड़ प्रायः सभी देशों में फ्रेंच चाल है। हिन्दुओं की तरह दो बार खाना होता है। प्रातःकाल, दोपहर को, सायंकाल अर्थात् रात आठ बजे के अन्दर। प्रातःकाल अर्थात ८।६ के समय कुछ काफी पीना। इंग्लैण्ड और रूसिया छोड़कर चाय की चाल अन्यत्र बहुत कम है। दिन के

भोजन का फरासीसी नाम है "देजुने" अर्थ उपवास-भंग, अंग्रेजी "ब्रेकफास्ट"। सायं भोजन का नाम है "दिने" अंग्रेजी—"डिनार"। चाय पीने की धूम रूसिया में अत्यन्त है—निहायत ठंढक पड़ती है, और चीन भी नजदीक है। चीन की चाय बड़ी अच्छी चाय होती है—उसका अधिकांश रूस हो जाता है। रूस का चाय-पीना चीन की तरह है अर्थात् दूध नहीं मिलाया जाता। दूध मिलाने पर चाय या काफी जहर की तरह अपकारी है। असल चाय पीनेवाली जातियां हैं चीनी, जपानी, रसियन और मध्य एशियावासी, बिना दूध के चाय पीती हैं। उसी तरह तुर्क आदि आदिम काफी पान करनेवाली जातियां बिना दूध के काफी पान करती हैं। लेकिन रूसियामें चाय के भीतर एक टुकड़ा पाती-निबू और एक रोड़ा चीनी का छोड़ देते हैं। गरीब लोग एक रोड़ा चीनी का मुंह में छोड़कर उसके ऊपर से चाय पीते हैं और एक आदमी का पीना समाप्त हो जाता है तो वह रोड़ा निकाल कर दूसरे को देते हैं, वह मनुष्य भी भी वह रोड़ा पूर्ववत् मुंह में डालकर चाय पीता है।

भिक्षुक के प्रति।

दशा जो तुम्हारी कहीं करुणा कर होती न,
कैसे करुणा के सिन्धु फिर कहलाते वे।
द्रवते न जन जो दया से देख तुमको तो,
कैसे दया धाम शुचि नाम धापाते वे।
धाम ही रहता जो तुम्हारा कहीं निश्चित तो,
कैसे सर्वधाम की उपाधि फिरपाते वे।
कवि "उमराव" दीन होते यदि तुम नहीं,
दीनबंधु कहो फिर कैसे कहलाते वे॥

चतुर्वेदी उमरावसिंह पाण्डेय-प्रेम।

गीता तत्त्व।

(अनुदित)

गीता के प्रथम और द्वितीय अध्याय में जो कुछ है, आज उसी विषयपर बोलूंगा। हम सभी जानते हैं कि गीता का आदर हमारे देश में कितना है। इसके विस्तार का मूल कारण यही है कि गीता में हिन्दूधर्मका सार है। गीतामाहात्म्य के सम्बन्ध में एक सुन्दर श्लोक है:-

सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः।
पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धः गीतामृतम् महत् ॥

सभी उपनिषद् गौके रूप में हैं। भगवान श्रीकृष्ण उस गौका दूध निकालनेवाले, अर्जुन उस गौके बछड़े के समान हुए हैं। जिस प्रकार बिना बछड़े के समीप गाय दूध नहीं देती, उसी तरह से ही यहां भी अनुमान करना चाहिये। अर्जुन के प्रश्न करनेपर ही भगवान श्रीकृष्ण का शास्त्रोपदेश हुआ है और इस तरह से गीता रूप दूध का प्रादुर्भाव हो सका है। इसी दूध के पान करनेवाले सुधी किम्वा विवेकी पुरुष हैं।

हमारे देश में जो दो-चार पुस्तकें पढ़े हैं, या दो-चार बातें बनाकर कथा का रूप देते हैं, वे ही पण्डित कहे जाते हैं, किन्तु गीता के मतसे लम्बी-चौड़ी कहानी गढ़नेवाले ही पण्डित नहीं हैं। प्रत्युत जो जीवन में सत्य का रूप प्रत्यक्ष करते हैं, अपरोक्षानुभूति अर्थात् इन्द्रियों के अतीत पदार्थों का ज्ञान प्राप्त किये हैं, असत्यमें से सत्यके रूपको समझ लेते हैं, वे ही पण्डित हैं। सुना जाता है, कि किसी श्रेणी का एक हंस पक्षी है, जो दूध और जल के सम्मिश्रण होनेपर भी सीधे दूध ही ग्रहण करता है और जल छोड़ देता है; उसी तरह संसार में सत्य और मिथ्या के संयुक्त रहनेपर मिथ्या परित्याग करते हुए जो सत्य

ग्रहण करते हैं, वे ही पण्डित हैं। ये ही गीता के समझने या समझाने में समर्थ हैं। गीता की अनेक टीकाएं हो चुकी हैं। हमारे देश में तीन श्रेणी के आचार्य अपने अपने मतों के समर्थन में भाष्य, टीका लिख कर गीता का अर्थ लिखे हैं। अद्वैतवादी आचार्य शंकर अद्वैतवाद के समर्थन में गीता का भाष्य लिखे हैं। विशिष्टाद्वैतवादी रामानुज तथा द्वैतवादी माधवाचार्य भी अपने ही मतों के समर्थन का रूप देते हुए गीता का अर्थ लिखे हैं। तुम लोगों को इतनी टीका देखने की आवश्यकता नहीं है। तुम लोगों के मन का झुकाव किसी मत विशेष की ओर न जाकर एक भाव में ही है। अपने सहज ज्ञान से जिस अर्थ की प्राप्ति करोगे वही काफी होगा। इस युक्ति से जहां जहां अर्थ नहीं समझ में आवेगा, उसी स्थल को समझने के लिये एक और भी उपाय है। जिन्होंने महाभारत के पढ़ने के कष्ट उठाया है, वे समझ सकते हैं कि, भगवान श्रीकृष्ण का जीवन ही इस गीता शास्त्र की प्रधान टीका के तुल्य है। तुम लोग शरीरधारी हो। शरीर होनेपर भी उससे और अविनाशी, जन्म-मृत्यु विरहित आत्मा से भिन्न कुछ नहीं है। सदा इसी ज्ञान को मन में रखकर, अपने लाभ हानिकी ओर ध्यान न देते हुए कर्त्तव्यपरायण होना, मनुष्यजीवन के क्षणस्थायी सुखदुख से अविचलित होना और न होना इत्यादि शिक्षारुप से गीता में हैं। प्रायः वे सभी भगवान श्रीकृष्ण की जीवन घटनाओं से सम्बन्ध रखती हुई मिलती हैं। अतः गीता का यदि कोई प्रसंग समझ में न आवे, तो भगवान कृष्ण के जीवन का अनुसन्धान करिये; इसीसे वास्तविकता मिल जावेगी।

एक और प्रसंग है—वेद के उपनिषद् भाग में आत्मा, ईश्वर, जीव और सांसारिक सम्बन्ध का जो सत्य और विस्तृत चित्रण है, उसीका संक्षेप गीता में देखा जाता है। जगह जगह उपनिषद् की भाषा भी है। इसीलिये गीता की गिनती उपनिषदों में होती है और गीता का दूसरा

नाम गीतोपनिषद् है। गीतामाहात्म्य में गीतापाठ का भी विशेष फल लिखा है। जैसे:—

"गीताध्याय समायुक्तो मृतो मानुषतां व्रजेत्।"

जो नित्य गीता पाठ करते हैं, वे दूसरे जन्ममें मनुष्यत्व प्राप्त करते हैं। किसी दूसरी हीन योनि में उनका जन्म नहीं होता। यह सरल प्रसंग नहीं है। मनुष्यत्व प्राप्त करना बड़ा ही कठिन है। जो मनुष्यत्व प्राप्त किये हैं, उन्हें ज्ञानबल, भक्तिबल, या दूसरे किसी विषय का बल प्राप्त करते कितनी देर लगती है। आचार्य शंकर कहते हैं:—

"दुर्लभंत्रयमेवैतत् दैवानुग्रहहेतुकम्।
मनुष्यत्वं मुमुक्षुत्वं महापुरुषसंश्रयः॥"

संसार में इन तीनों चिजों की प्राप्ति देवताओं के अनुग्रह बिना नहीं होती। जैसे; मनुष्यत्व, मुमुक्षुत्व, अर्थात् मुक्त होनेकी इच्छा; शरीर का सुख, मनका सुख न देखते हुए किसी एक उच्च उद्देश्य को स्थिर करके जीना उचित है। स्थिर अविचलित एक उद्देश्य से क्रमानुसार भगवान के समीप भी पहुंचा जा सकता है। साधारण लोग आत्मसुख में ही व्यस्त रहते हैं। जीवन का विशेष उद्देश्य रखकर कौन चलता है? तीसरा महापुरुष संश्रय है। जो पुरुष अपने जीवन को सुमहत् उद्देश्य से गठित किये हैं, ऐसे ही पुरुषों की संगति करना और उनके श्रीमुख से मानवजीवन का उद्देश्य श्रवण करना चाहिये, वह ऐसा दुर्लभ क्यों है? धर्मकथा, सत्कथा तो तुम भी कहते हो, मैं भी कहता हूं, किन्तु इसके द्वारा कोई काम क्यों नहीं होता? हम लोगों की कथा में शक्ति नहीं है, क्योंकि वह प्राण की कथा नहीं है। हम लोगों का मन और मुख एक नहीं है। हम सभी सांसारिक सुखके लिये लालायित हैं; इसलिये मुखदेखी बात कहते हैं। मुँह से ही त्याग की बात कहते हैं। फिर भला हम लोगों की वार्ता से काम ही क्या होगा। जो पुरुष अपना जीवन महत् उद्देश्य से गठित

किये हैं, मन और मुँह एक बनाये हैं; उनकी ऐसी बातें हृदय से मोह के अन्धकार को मिटा देती हैं—हृदय का द्वार खोल देती हैं। महापुरुषों की कथाएं विशेष शक्ति रखती हैं। परमहंस देवकी कथा में कितनी शक्ति है! क्राइस्ट या बुद्धदेव की हजारों वर्षों की पुरानी कथाएं पढ़ो, अब भी उन कथाओं में कितनी शक्ति है! किन्तु तुम्हें या मुझे उन कथाओं के बोलनेपर भी किसीको चोट नहीं पहुंचेगी। अतः जितना ही महत् उद्देश्य से अपना जीवन व्यतीत करोगे, उतनी ही प्रभावोत्पादक तुम्हारी बातें होंगी। उस समय किसी प्रकारकी बात कहनेपर लोगों के हृदयपर असर करेगी। जिस पदार्थ को बढ़ानेकी चेष्टा करोगे, उसकी शक्ति बढ़ेगी। मनकी शक्ति बढ़ाने की चेष्टा करो तो मानसिक शक्ति वृद्धि होगी। इसी तरह वाक्शक्ति को वृद्धिकी चेष्टा करो तो किसी विषय विशेषपर बोलने की क्षमता बढ़ेगी। वेदान्त में लिखा है कि संसार की सृष्टि यह मन ही ने किया है। मन में एक अद्भुत शक्ति है। जड़वादी यूरोप भी इसे स्वीकार करता है। इतिहास पाठसे भी मनकी अद्भुत क्षमता का परिचय मिलता है। फ्रांस देशकी रानी मेरी एण्टीनेण्ट अपूर्व रूपवती थी। एक दिन लोगोंने इस रानी और इसके पति राजा दोनोंको जेलमें कैद कर दिये। दूसरे दिन प्राणदण्ड देना निश्चित था। सवेरे जब देखा गया तो रात्रिकी ही दारुण मानसिक कष्ट से रानी मेरी एकदम बूढ़ी हो गयी। मनकी इतनी क्षमता है। मन यदि तीव्र भाव से किसी वस्तु के लिये झुके, तो यह निश्चय है कि उसे उसकी प्राप्ति होगी। हम लोग सम्पूर्ण मनसे किसी पदार्थ को नहीं चाहते, इसीलिये तो नहीं मिलता। हम लोगों का मन, जैसा कि परमहंसदेव कहते हैं, सरसों की पोटली तुल्य है। इस पोटली के खुल जानेपर दाने बिखर जाते हैं, और तब उनका एकत्रीकरण असम्भव हो जाता है। मनका भी

इसी तरह से एकबार भिन्न-भिन्न रूप, रस, धन, और मान आदि सांसारिक वासना में उलझ जानेपर सम्पूर्ण रूपसे एकत्र करना असम्भव हो जाता है। इसीलिये परमहंस देव बालकों को इस प्रकार प्रिय थे। क्योंकि उनका मन एक जगह है। उनमें सत्वका बीज बोने से वह शीघ्र ही अंकुरित होगा।

गीता के प्रत्येक अध्याय के एक एकका नाम योग बतलाया गया है। योग अर्थ एक एक करके भगवान के समीप पहुंचाता है। जैसे प्रथम अध्याय का नाम विषादयोग है। विषाद योग बोलने का कारण यह है कि अर्जुन का विषाद ही भगवान के समीप पहुंचाने की युक्ति थी। बस, वही विषाद योग है। इसी तरह से सांख्ययोग, कर्मयोग और सन्यास योग भी है। हम कह सकते हैं कि गीता अर्जुन के लिये कही हुई वार्ता है, उससे हमारा क्या होगा? हम तो किसी युद्ध में नहीं जाते, या महावीर अर्जुन के संग में हम लोगों जैसे क्षुद्र जीवन का कोई भी अंश मेल नहीं खाता, सादृश्य नहीं मिलता। अतः एक बड़े अधिकारी के उद्देश्य सिद्धि के लिये कहा हुआ या उपदेश दिया हुआ शास्त्र हमारा उपकार किस प्रकार कर सकता है? इसके उत्तर में कहा जायगा कि अर्जुन अवश्य हमसे सौगुने बड़े थे परन्तु वे तो मनुष्य ही। हम भी मनुष्य हैं। उनके मनमें जिस प्रकार मोह कभी कभी उत्पन्न हुआ था, वैसे ही हमारे मनमें भी उसका संचार होता है। हम लोगों के आगे भी उनके ही समान सत्य मार्ग में विघ्न बाधाएं उपस्थित होती हैं। हम लोगों में भी वैसे ही भीतर और बाहर जीवन संग्राम चलता है। बस तो ठीक है, हम भी तो गीता-पढ़ने से शिक्षा पाते हैं, शान्ति पाते हैं, जीवन समस्या का एक समाधान पाते हैं। देखने में आया है कि कितने पापी गीता का पाठ करके अपनी आंखों से अनुताप का अश्रु बहाते हैं और ध्येय की ओर अपने जीवन का बहाव बना सके हैं।

एक बात और है। गीता क्या महाभारत में प्रक्षिप्त है? कोई कोई यूरोपीय विद्वान कहते हैं कि गीता प्रक्षिप्त है। हमारे देशके अनेक सज्जन भी वैसी कहते सुनते हैं। ये कहते हैं कि भारतवर्ष के प्राचीन काल का कोई इतिहास नहीं है, कभी था भी नहीं। अतएव कुरुक्षेत्र के युद्धके पूर्व जो इस प्रकार के एक विस्तृत दर्शन संग्रह का वस्तुतः उपदेश हुआ है, बिलकुल युक्ति विरुद्ध है। किसी विषयपर विश्वास करने के लिये सर्वप्रथम वह सम्भव है या असम्भव जानना होगा। उसका उत्तर यही है कि, पहिले तो भारतवर्ष की तरह अनेक देश को पुराना होने दो तब देखा जायेगा, उसका भी कितना इतिहास था। भारत कितने दिनका है, कितना विप्लव यहां हुआ है, कितनी बार इसका तोड़ मरोड़ हुआ है, कितनी बार उठ और गिरा है। यूरोप इसे क्या जानेगा? यूरोप तो उस दिनका है। अब भी देखा जाता है, युगों पूर्व समय-समयपर जिन तत्वों का भारत में प्रकाश हुआ था, वे सब आज यूरोप में प्रकाशित हो रहे हैं। इससे यही सिद्ध होता है कि किसी समय भारतवर्ष कितना ऊंचा उठा था। इस भारत के समान उदारता कहां थी? हम लोगोंके नीति-शास्त्र में लिखा है, सत्य के विषय पर चण्डाल से भी शिक्षा लेनी चाहिये, क्योंकि ज्ञान ही भगवान हैं अतएव वह पवित्र भी रहा। जहां ज्ञान है, वहीं कवित्व है। गीता में लिखा है—

"ज्ञानाग्निः सर्व कर्म्माणि, भस्मसात् कुरुतेऽर्जुन।"

एक बार उसी ज्ञान के आनेपर अन्य दूसरे कुछ भी "कु" (बुरे) नहीं रह जाते। परमहंसदेव कहते हैं कि, जिसने मिश्री खा ली है, उसके निकट गुड़ का आदर क्या होगा?

धर्म और दर्शन भारत के प्राणस्वरूप हैं। हम लोगों के देश के लोगों के अस्थि से, मज्जा से, हरएक कार्य से, यही प्राणप्रतिघात अब भी मिलता है। उस समय युद्ध के उद्योग के पहिले इस तरहके शास्त्रका उपदेश नहीं हो सकता, इस विषय के प्रमाण

विशेष जबतक मिलेंगे, तबतक हम लोगों का पुरानी जातीयता वा विश्वास परित्याग करके तुम्हारी बातें क्यों ग्रहण करेंगे ? गीता के वक्ता स्वयं ईश्वरावतार श्रीकृष्ण हैं। हम लोगों के विचार साधारण पुरुष के पक्ष में जो कार्य सम्भव नहीं हैं, वह उनके समान महापुरुषों के लिये सम्भव हैं। यह भी समझना होगा। महाभारत के अन्यान्य अंशों की भाषा और गीता की भाषा में कुछ विषमता नहीं मिलती, जिससे तुम्हारी बातें मानी जायें। जिन लोगोंने साधु-संग किया है, वे समझेंगे, कि संसार में जिसे हम भारी विपत्त कहते हैं, साधु उसीके भीतर स्थिर रहकर महान तत्वकथा आरम्भ करते हैं। यह हम लोगोंने प्रत्यक्ष किया है परहंसदेव भयानक रोगग्रस्त हैं, प्रायः छः मास से आहारादि बन्द है, किन्तु समीपवर्त्ती लोगों के भीतर महा आनन्द के कार्य चल रहा है। अत्यन्त गूढ़ साधन, जगत के कूट प्रश्न की मीमांसा और निरवच्छिन्न आनन्द प्रगट करते हुए सबको मुग्ध किये हुए हैं। रोग, कष्ट वा दुख का नाम भी नहीं है। अर्जुन स्वयं भगवान के समीप थे। ज्ञान की कथा समझाते कितनी देर लगी थी ? अतः यह प्रक्षिप्त नहीं है। अगर कहो कि, वह सब छोड़ो, गीता का आध्यात्मिक अर्थ है, वह यह है—संसारक्षेत्रमें इन्द्रियों के साथ लड़ाई—खाने की चीजों के साथ लड़ाई, इस तरह से अनेक युद्ध मनुष्य को करना पड़ता है। इसके लिये विश्राम नहीं है, शान्ति नहीं है। इस संग्राम में विजय लाभ करने के लिये किस तरह से मनुष्य जीवन का सार प्राप्त कर सकेगा, इन्हीं विषयों का समाधान करना ही गीता का भाव है। ठीक है, इस तरह से विश्वास करना चाहो तो कोई आपत्ति नहीं।

पहिले कह चुका हूं, गीता का उपनिषदों में स्थान है। बहुतों स्नान करके प्रतिदिन एक अध्याय गीता पाठ करते हैं। वे गीता के प्रत्येक श्लोक का मन्त्र की तरह पवित्र मानते हैं। जिस तरह मन्त्र को ऋषि, देवता, छन्दगी हैं, इसके भी उसी तरह हैं। गीता के ऋषि वेदव्यास हैं, क्योंकि वे ही मन्त्र दर्शन किये हैं। ऋषि शब्द का अर्थ अतीन्द्रियदर्शी है, वे देखे हैं, तब साधारण लोगों के लिये इस विषय को श्लोकबद्ध किये हैं। उनसे ही मन्त्र प्रथम प्रकाशित हुआ है, अतएव ऋषि शब्द का अर्थ अङ्गरेजीके Author का ही बोधक है। प्रत्येक मन्त्र के जिस तरह ऋषि अर्थात् रचयिता, देवता अर्थात् जिस विषय विशेष को लेकर मन्त्रों की रचना हुई है, छन्द अर्थात् जिस तरह पद-विन्यास में मन्त्र की भाषा लिपिबद्ध हुई है, उसी तरह बीज भी है, गीता में भी उसी तरह है। बीज में जिस प्रकार पेड़ है, उसी तरह ग्रन्थ में इस तरह एक विषय है, जिसके अवलम्बन से या जिसकी विस्तृति के रूप से अपर अंश लिखा जाता है। गीता के बीज स्वरूप वह विषय क्या है ?

"अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे।"

अर्थात् जिस लिये शोक करना उचित नहीं है, उसके लिये शोक करते हो, और पण्डितों के विचार की बातें कहते हो। इसका अर्थ यही है कि मुखसे कुछ निकलता है, मनमें कुछ है और तुम सरल नहीं हो। जिसके मुँहसे कुछ निकले और मन में कुछ रहे उसे धक्का खाना होगा। सत्य या भगवान प्राप्ति में उसके लिये काफी देर है। परमहंसदेव कहते हैं कि मन और मुँह दोनों एक करना होगा, यही प्रधान साधन है। गीता में भी यही कहा गया है। धर्मरूप, महावृक्ष का बीज सरलता से भिन्न और कुछ नहीं है। प्रत्येक मन्त्रके पश्चात् जिस तरह शक्ति है, गीता को भी उसी तरह की विशेष शक्ति इस श्लोक में निबद्ध है।

"सर्व धर्म्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वां सर्व पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि माशुचः॥"

'सब छोड़कर हमारे शरण में आवो, सभी कार्य सिद्ध होंगे।' हम

कितना प्रकार मतलब सिद्ध करते हैं। यह करेंगे, वह करेंगे। किन्तु अधिकांश समय वह एक चोट ही में टूट जाता है, एक महाशक्ति सभीको तोड़ देती है। उसके हाथ के भीतर हम जैसे रहे हैं, उसकी अनुमति से सब कुछ झुकता या चलता है। परन्तु इससे यह नहीं सिद्ध होता कि, Free Will या मानव की स्वाधीनता नहीं है। मनुष्य स्वाधीन इच्छा और अदृष्ट के बीच में है। जैसे कि एक आलोक और अन्धकार के संयोग भूमि है। निश्चित कहा नहीं जा सकता है यह आलोक है या अन्धकार। सृष्टि के प्रारम्भ से ही मनुष्य इसी अतीन्द्रिय वस्तु के जानने की चेष्टा करता है। यूरोप में महात्मा सक्रेटीस प्रभृति चिन्ताशील विवेको इस जगत के जानने की चेष्टा किये कि यह जगत क्या है, किस शक्ति से इसका प्रकाशन अवलम्बित है, स्वाधीन है या पराधीन इत्यादि विषयों के निर्धारण में। परन्तु कुछ भी सफलता नहीं प्राप्त कर सके। बात यह है कि मनसे ये सब नहीं जाने जाते, क्योंकि मनकी सीमा है। अन्तविशिष्ट वस्तु भला अनन्त वस्तु को किस प्रकार जान सकती है। इन्द्रियोंसे परे न पहुंचनेपर इन प्रश्नों की मीमांसा नहीं होती। इस प्रश्नों का समाधान मन किस प्रकार करेगा। एक कहानी है कि एक पंडित इन्हीं बातों के समझने, समझानेकी कोशिश किये थे, किन्तु किसीका पता न पाकर समुद्रमें डूबने चले। वहां देखते हैं कि, एक बालक अद्भुत खेल खेलता है। समुद्रके किनारे पर एक गड्ढा खोदता है और अपनी छोटी अंजलीमें जल लाकर उस गड्ढेको भरनेकी चेष्टा करता है। अपने अशेष आयास और अनेक बार अपने छोटे-छोटे पांवोंसे इधर-उधर आता हुआ पण्डितजी को दिखाई दिया। इसीपर पण्डित जी की दृष्टि खिंच गयी कि बालक क्या करता है। बालक के समीप जाकर उससे पूछे कि, बालक! यह क्या करते हो? उसने उत्तर दिया कि समुद्र का जल इसी गड्ढे में लाता हूं। इस उत्तरपर पण्डित

जी हंसे नहीं, किन्तु मन-ही-मन कल्पना करने लग गये, अपना मनके द्वारा मनातीत वस्तु के पकड़ने की चेष्टा या प्रयास—क्या मेरा भी ऐसा ही है। स्वामी विवेकानन्द महाराज कहते थे—हम जैसे नापने के फिता लेकर निकलें—भगवान को नापकर इति कर देगें। परन्तु ऐसा कभी नहीं हो सकता।

मन जड़ है। हम लोगों के ऋषि इसे अच्छी तरह जानते थे कि मन सूक्ष्म जड़ है और इस स्थूल जड़को चलाता है। किन्तु यह अपनी ही शक्तिसे प्रभावान्वित नहीं होता, यह आत्माकी शक्तिसे शक्तिमान है, वही सब कुछ चलाता है। यूरोपके अनेक विद्वानोंका विश्वास है कि मन ही आत्मा है, किन्तु ऐसा नहीं है। गीता पाठ करनेपर इन सभी बातोंके समझने या ऐसे प्रश्नोंके समाधानके लिये सभी उपयुक्त अधिकारी हो सकते हैं।

किस तरह ऐसा होगा? विश्वके मनके साथ, विश्वकी इच्छाके साथ अपने क्षुद्र मन और इच्छाको एकसूत्रमें जोड़ना पड़ेगा। एकसे जिस प्रकारके भाव, जिस प्रकारके स्पन्दन होंगे, दूसरेसे वैसे ही भाव और स्पन्दन उठेंगे। तभी क्षुद्र मनसे वासना-प्रसूत, ज्ञानकी विघ्न-बाधाएं सभी दूरीभूत होंगी और विशेष शक्ति प्रकाशित होगी। इसी-से गीतामें बताये हुए धर्मकी सारी शक्तियां इसी श्लोक में बांधी हुई हैं।

(क्रमशः)

आधुनिक अवतार—रामकृष्ण

बाल्यावस्था, मातेश्वरी काली और उनको संतान और ब्राह्मण पुजारी

श्री रोमा रोलां द्वारा रचित

(गताङ्कसे आगे)

पर दक्षिणेश्वर मंदिर की निर्माण कर्त्ता एक शूद्रा थीं। ऐसी स्थिति में जो ब्राह्मण सेवा वृत्ति ग्रहण करता वह अवश्य ही निन्दित होता। रामकुमार ने इस नौकरी को १८५५ ई० में स्वीकार कर लिया किन्तु उनके छोटे भाई के लिये जो कि उस समय जाति-पांति का कट्टर पक्षपाती था उस समय इसे स्वीकार करना आसान न था। पर क्रमशः उसकी भी कट्टरता कम होने लगी और दूसरे साल अपने भाई की मृत्यु होनेपर रामकृष्ण ने उसे स्वीकार कर लिया।

उनको अवस्था उस समय २० वर्ष की थी। उस समय युवक पुजारी यह नहीं जानता था कि उसने एक भयंकर देवीकी सेवावृत्ति ग्रहण की है। जिस प्रकार बाघिनि अपने शिकार को देखकर कौतुक करती है उसी प्रकार करीब दश वर्ष तक उसने भी इनके साथ खेला किया। १० वर्षतक उन तेजोमयी भयंकरी मूर्ति को जादू भरे असर में, देवी के प्रेम में, विभोर हो कर वे रहे। पर वे माथा चक्कर में डालनेवाले चक्कर के बीच में। कारण मानसूनी वादल की तरह अपार जनसमूह उस मन्दिर के पास इकट्ठा होने लगा। शत-शत साधु, सन्त, फकीर, तीर्थयात्री हिन्दू और मुसलमान ईश्वर के भक्तों का जमघट होने लगा।

मन्दिर बहुत बड़ा था। गंगा के किनारे खुली जगह में एक कतार में नौ गुम्बज युक्त मंदिर है और दूसरी कतार में १२ छोटे-छोटे शिव मंदिर हैं। बड़े चतुष्कोण प्रांगण की दूसरी ओर काली की प्रतिमा

के सामने राधाकृष्ण का एक बड़ा मन्दिर था। मानो विश्व प्रकृति मां (काली) की त्रिमूर्ति, विश्वसंहारक (शिव) और मूर्तिमान प्रेम (राधाकृष्ण) की प्रतिमा का निर्माण कर भूमण्डल से स्वर्गलोक के लिये पुल निर्माण किया गया था।

किन्तु वहां की प्रधान अधिष्ठात्री थीं मां काली।

वहां नाना भांति के अलंकारों से विभूषित बनारसी सुन्दर सारी पहने देवता और मनुष्यों की देवी मां काली की मूर्ति वर्तमान है। चार हाथवाली देवी काली अपने बायें तरफ के हाथों में नरमुण्ड और खड्ग लिये तथा दाहिने हाथों से भक्तों को अभय और वरदान देती और अपनी शरण में बुलाती हुई उत्तान पड़े शिव के ऊपर नृत्य करती है। वह संहारिका और सृष्टि की रचनेवाली देवी हैं।

पर जगज्जननी मां काली उन लोगों के लिये जो उनके स्वरूप से परिचित हैं इन से भी बढ़ कर है। "मां काली जो अपनी सन्तान के सामने भिन्न-भिन्न रूप और अवतारों के रूप में आविर्भूत होती हैं और वह चाहे तो किसी को भी उस अनादि के रहस्य को समझने की शक्ति प्रदान कर सकती है। ससीम प्राणी उसकी कृपा से उस असीम का—आत्मा का— ब्रह्म का रहस्योद्घाटन कर सकता है।"

किन्तु २० वर्ष का युवक पुजारी अभी तक अप्रत्यक्ष रूप में भी सत्य के उस केन्द्र की तरफ नहीं पहुंचा था जहां कि निखिल ब्रह्म का सत्य एक में सन्निवद्ध है। अपनी जाति के अधिकांश लोगों की तरह वह भी उसी सत्य से अवगत था, जिसे कि वह देख, सुन या स्पर्श कर मालूम कर सकता था। यूरोपियन आस्तिकों को—उन में भी कैथेलिकों की अपेक्षा प्रोस्टेंटो को—भारतीय आस्तिक को अपने धर्म को विषम अवस्था बहुत खटकती है। रामकृष्ण परमहंस से पीछे जब एक बार इनके शिष्य विवेकानन्द ने यह पूछा था कि क्या आपने ईश्वर को देखा है, तो उन्हों ने जवाब दिया था "मैं तो उसी तरह

उसे देखता हूं जैसे तुम्हें; बल्कि इस से भी अधिक प्रत्यक्ष रूप में वह दिखाई पड़ता है, पर याद रखो जैसा वेदों ने बताया है उस रूप में नहीं।" (यानी निराकार रूप में नहीं; यद्यपि उन्हें भी ईश्वर का यह स्वरूप मालूम था।)

यह बात कुछ इने गिने लोगों के लिये ही नहीं है। हरएक सच्चा भक्त हिन्दू इस भावना को बहुत ही आसानी से हासिल कर लेता है। उसकी कल्पना शक्ति का प्रवाह इतना धारावाहिक और स्वछन्द है कि एक बार मेरा एक मित्र, एक ऊंचे दर्जे की शिक्षिता सुन्दरी युवती नेपाली राजकुमारी के साथ मन्दिर में गया और वहां वह धूप दीपादि से सुवासित मन्दिर में अकेले बहुत देर तक प्रार्थना करती रही। जब कुमारी मन्दिर में से निकली तो उसने शान्ति से कहा "मैंने श्री रामचन्द्र को देखा है।"

फिर श्रीरामकृष्ण ने खड्ग-खप्पर-धारिणी मां काली को क्यों नहीं देखा होगा? प्रकृति देवी उनके सामने दृश्य थी। दृश्य काली, अवतार रूप में मानव देह में—स्त्री के रूप में—अपने शरीर के भीनी सुगन्धि से राम कृष्ण को मुग्ध करती थीं। काली वहां मन्दिर की एक साधारण उपासना करने के लिये मूर्ति नहीं थी। वे वहां जीती जागती देवी थीं। मानव प्राणी की तरह वे भी अपने बिस्तरे से उठती, खाती, घूमती-फिरती तथा फिर सोती थीं। इस प्रकार की उन की दिनचर्या के अनुसार मन्दिर का कार्यक्रम चलता था। प्रत्येक दिन उषा की लाली के समय ही छोटी-छोटी घण्टियां बज उठती और सुन्दर प्रदीपों से आरती उतरती। उधर वाद्य घर में शंख, झांझ मृदङ्गादि की मधुर ध्वनि नित्य होती और मां काली की निद्रा भंग होती। बगीचे में सुन्दर गुलाब, चमेली आदि के ताजे-ताजे ओस से भरे फूल उन्हें सजाने के लिये सबेरे ही चुने जाते। सवेरे करीब ९ बजे भोजन के लिये गान वाद्य का समारोह होता। ग्रीष्म के दो-पहर

में उसी समारोह के साथ बाजा बजता और मां चांदी के सिंहासन पर सो जातीं।

संध्या के ६ बजे उसी प्रकार का आयोजन होता और मां काली फिर आविर्भूत होतीं। फिर उसी प्रकार नाना भांति के वाद्य-यंत्रों द्वारा कीर्तन होता; कहीं वंशी बजती तो कहीं तम्बूरेकी झङ्कार होती; कहीं आरती उतरती तो कहीं धूपादि सुगंधित द्रव्यों की भीनी गन्ध उठती; और इसी प्रकार मां रात के ९ बजे फिर सो जातीं।

दिन भर के इन सभी आयोजनों में पुजारी जी का प्रधान भाग व्यतीत होता। वही उन्हें वस्त्राभूषण बदल-बदल कर पहनाते, पुराने फूल उतार नये से सजाते एवं जलपान करा कर समय पर भोजन कराते थे। जगज्जननी के प्रातःकाल उठने और रात के समय सोने तक हर समय पुजारी प्रस्तुत रहते फिर भला उनकी आंखें, उनके हाथ और सब से बढ़ कर उनका हृदय मां की भक्ति से क्रमशः ओत-प्रोत क्यों न हो जाय। वे पहले हिचकिचाते हुए मां की सेवा में प्रवृत्त हुए थे। पर मूर्ति के किसी टूटे भाग को अपने निपुण हाथों से मरम्मत करते समय वे सर्व प्रथम मां की उपासना में आकर्षित हुए। जब कि उन्हों ने अपनी कांपती हुई उँगलियों में काली के खग्डा को लिया था।

इस प्रकार अपने असर का डंक डसकर देवी भग गई और राम-कृष्ण के सामने साक्षात होना स्वीकार नहीं की। प्रेम रस प्याला पी चुकने पर देवी अपनी प्रस्तर मूर्ति में अन्तर्हित हो गईं। किन्तु देवी को प्राप्त करने के लिये आलिङ्गन करने के लिये, उनमें जीवन चिन्ह की एक झांकी, धीमा स्वर, एक मुस्कुराहट देखने के लिये वे अधीर हो उठे और वही उनके जीवन का एक उद्देश्य हो गया। बगीचे के एकान्त कोनेमें— जङ्गलमें—चिन्तन करते हुए, रोते हुए, पागल की तरह अपने कपड़ों को यहां तक कि जनेव को भी जिसे कोई ब्राह्मण नहीं हटावेगा—तोड़ते फाड़ते हुए पड़े रहते। किन्तु

माता के पावन प्रेम ने उनके सामने इस अटल सत्य को खोल दिया कि जोकि अपने को ईश्वरार्पण कर दिया है उसे सभी पक्षपातों को दूर करना चाहिये। उनकी अवस्था खोये हुए बालक की तरह थी। रोते हुए उन्होंने माता से प्रकट होने के लिये प्रार्थना की। जैसे दिन बीतने लगे उनका पागलपन भी बढ़ता ही गया। अपने ऊपर के आत्मशासन को वे भूल गये। निराशा में विभोर हो वे लोगों के सामने ही जमीन पर गिर पड़ते। वे करुणा, ठट्ठा और बदनामी के पात्र हो गये! पर लोगों के अपवाद से क्या। केवल एक चीज की उन्हें परवाह थी। वे जानते थे कि मैं उस अज्ञेय अशेष से एक कदम के फासले पर हूं। एक धूंधला आवरण उसके बीच में है और वे उसे अभी तक फाश नहीं कर सके। उनके इस निरंकुश बढ़ाव में—क्योंकि उनका कोई पथ-प्रदर्शक नहीं था। और वे समाधि कला जिस से भारतवर्ष हजारो वर्षों से पूर्ण परिचित था और जिस कला के हर दिशा में काफी प्रकाश यहां दिया गया था—बिल्कुल परिचित थे जिसके फलस्वरूप वे प्रायः बेहोश हो जाते, यहां तक कि वे विनाश की अवस्था में पहुंच जाते। नये योगी के लिये मृत्यु सदा बगल ही में खड़ी रहती है।

दर्शक इस बात को बतलाते हैं कि इस पागलपन की अवस्था में मरोड़ के कारण उनका शरीर कांप उठता, उनकी आखों से अश्रु प्रवाह प्रवाहित होने लगता तथा उनका चेहरा और उनकी छाती खून चढ़ जाने से लाल हो जाता। सहन शक्ति की सीमा पर वे पहुंच चुके थे उसके बाहर अन्धकार पूर्ण खोह थी या था प्रकाश का अतुल स्रोत।

उन्हों देखा। अब रुकावट नहीं रही।

उन्हीं के मुखों से सुनिये। क्योंकि ईश्वर प्रेम के पागल की भावना अच्छी तरह हम लोग व्यक्त नहीं कर सकते।

"एक दिन मैं असहनीय पीड़ा का शिकार हुआ। मुझे ऐसा मालूम होता था कि कोई भींगे कपड़े की तरह मेरे हृदय को निचोड़ रहा और इस भावना से कि मैं उस स्वर्गीय आशीर्वाद का कभी शायद अनुभव नहीं करूंगा। भयङ्कर पागलपन ने मुझे धर दबोचा। मैंने सोचा यदि यही अवस्था रही तो इस जिन्दगी से बस अब नमस्कार है। पवित्र काली की प्रतिमा के पास मां की तलवार लटकी थी। मेरी नजर उस पर गयी। मेरे मन में बिजली की तरह एक विचार आया। यह खड्ग! यह मेरे सारी यन्त्रणाओं का अन्त कर देगी। मैं आगे बढ़ा और पागल की तरह उसे छीन—लिया...और देखो...वह स्थान, दरवाजे खिड़की, मन्दिर, वगैरह सब गायब—। इन सभी का वह अस्तीत्व नहीं था और उनके स्थान में तेजोमय अनन्त आत्माका असीम सागर का मैंने अनुभव किया। जिस दिशा में भी और जहां तक मैंने देखा प्रकाशमय समुद्र की उत्ताल तरंगे मेरी ओर प्रवाहित हो रही थीं वह भयङ्कर निनाद से मेरी ओर मुझे हड़पने के लिये प्रवाहित हो रही थी। दूसरे ही क्षण वे मेरे ऊपर पहुंच कर मुझे अपने में अन्तर्हित कर ली। उसमें मेरा दम घुटने लगा। मैंने अपनी संज्ञा खो दी और गिर पड़ा·······। वह दिन और दूसरा दिन किस प्रकार बीता मैं नहीं जानता। मेरे अन्दर अवर्णनीय आनन्द का समुद्र प्रवाहित हो रहा था। और उसके अत्यन्त गहराई में मुझे स्वर्गीय मां की उपस्थिति का भास होता था।"

इस सुन्दर वर्णन में ध्यान देने की बात है कि अन्तिम वाक्य में स्वर्गीय मां के नाम के सिवा और कहीं भी उनका नाम नहीं आया है; वे समुद्र रूप में पिघल गयी थीं। यदि कोई गौर से इस वाक्य को पढ़ेगा तो यह प्रश्न पूछे बिना न रहेगा "क्या उन्होंने उस स्वर्गीय प्रतिमा का साक्षात् स्वरूप देखा? वह ऐसा नहीं कहते।

इस समाधि के भङ्ग होने पर वे सुमधुर ध्वनि में मां ! मां ! पुकार उठे।"

मेरे बारे में (यदि मैं ऐसी धारणा के लिये क्षमा किया जाऊं), मैं तो समझता हूं कि उन्होंने मां को देखा नहीं; पर सर्वत्र उसकी उपस्थिति का उन्हें भास मिला। और इसी को वे समुद्र कहते हैं। यह वह अवस्था है जिसे आत्मा, बिना आश्चर्य की भावना के, प्रेम के प्रवाह में विभोर हो अपने प्रीतम प्रेयसी......का जिस किसी भी नाम से पुकार उठता है। क्योंकि प्रीतम ही तो सर्वस्व है। और सभी आकार उस प्रीतम के उपरी परिच्छेद मात्र हैं।"" और उस समुद्र के किनारे जिसकी लहरें रामकृष्ण के ऊपर बह रही थीं मुझे एवेला की टेरेसा की स्मृति कराती हैं जो पहले असीम में निमग्न थी पर उस जबरदस्ती-उसकी इच्छा के विरुद्ध-ईश्वर के अवतार का एक स्वरूप देने के लिये बाध्य किया गया।

किन्तु रामकृष्ण को अपने हृदय के झुकाव के विरुद्ध नहीं लड़ना पड़ा। बल्कि उसके प्रतिकूल यह उन्हें निराकार की तरफ से अपने प्रेमी साकार रूप की तरफ खींच लाया। उन्होंने ऐसी ही इच्छा की थी। और जब एक बार वे इसे देख चुके इसका रसास्वादन कर चुके तो फिर बिना उसके अब रहना असम्भव हो गया। उस दिन से उनकी एक भावना और कामना थी उस स्वर्गीय आनन्द का पुनः रसास्वादन करना। उसके बिना जिन्दगी निरानन्ददायक और अर्थहीन परदे पर की तस्वीर की तरह निर्जीव मालूम पड़ने लगी।

बिना छुटकारे के कोई असीम के गौरव का सामना नहीं कर सकता। प्रथम दर्शन का इतना गहरा असर पड़ा कि वे अपने चारों ओर की चीजों को तरल रजत की लहर के चमकीले कुहासे के अग्नि शिखा सी रूप में देखने लगे। वे अब अपनी आखों के मालिक नहीं रहे। उनका शरीर, उनकी आत्मा और मन पर किसी दूसरे

का शासन होने लगा। वे बड़ी मुसीबत से जीवन यापन करने लगे क्योंकि वे यह नहीं जानते थे कि यह सब क्या बला है। वे माता को सहायता के लिये पुकारे—

और अचानक वे समझ गये कि माता ही ने उनके ऊपर अपना अधिकार जमाया है। इस लिये उन्हों ने बाधा पहुंचाना उचित न समझ अपने को छोड़ दिया। मां को उनकी आत्मा को अपने स्वरूप से परिप्लावित कर दिया। और उस कुहासे के अन्दर से धीरे-धीरे देवी का स्वरूप बाहर होने लगा। पहले हाथ वह भी आधा ही फिर झुनझुनाहट—आवाज और फिर मां का सारा स्वरूप प्रत्यक्ष हो गया।

संध्या का समय था। दिनकी अर्चना समाप्त हो चुकी थी। मां की प्रतिमा को सुलाया जा चुका था। और वे गङ्गा के उस पार अपने कमरे में मन्दिर की दूसरी ओर वापिस चले गये थे। किन्तु वे सो नहीं सके। उनका हृदय जाग्रतावस्था में था। वे किसी को— किसी कुमारी को मन्दिर के उपरी भाग पर चढ़ते समय नुपुर की ध्वनि सुने। उन्हों ने अपने मन में सोचा क्या मै स्वप्न तो नहीं देखता।" कांपते हुए हृदय से वे प्रांगण में उठ कर आये। अपना सिर उठाते ही उन्होंने उसे देखा वह खुले बाल एकतल्ले में खड़ा होकर सुन्दर चांदनी रात में गङ्गा नदी की मनोहारिणी छटा और दूर—थोड़ी दूर पर उस पार कलकत्ते के बत्तियों मे प्रकाश को निरखती थी।

उस समय से उनके दिन और रात अपने आराध्य देवी की उपस्थिति ही में लगातार व्यतीत होने लगे। यह बिना बांधके नदी के प्रवाह की तरह लम्बी-चौड़ी वाग्धारा है। अन्त में वे उनके साथ पूर्णतया आत्मानन्द में संलग्न हो गये। और क्रमशः अन्तर्ज्योति बाहर निकलने लगी। जो कोई उन्हें देखता वह उनके अन्दर शीशे की तरह

सब देवताओं को देखता। मन्दिर के संस्थापिका रानी के दामाद और उस स्थान के मालिक मथुर बाबू रामकृष्ण के कमरे के ठीक दूसरी ओर अपने कमरे में बठे थे और उन से बिना दिखाई दिये हुए वे रामकृष्ण को गौर से देख रहे थे जोकि बरामदे में इधर-उधर टहल रहे थे। मथुर बाबू चिल्ला उठे क्यों कि उन्होंने रामकृष्ण के एक कंधे पर शिव और दूसरे पर मा काली को देखा।

बहुत लोग उस पुजारी को मतिभ्रम समझने लगे। वे वास्तव में मन्दिर के अपने कृत्यों को पूरा करने के योग्य नहीं रहे। पूजा करते-ही करते उनकी समाधि लग जाती और वे पत्थर की मूर्ति से अकड़ जाते अथवा देवी के साथ घनिष्टता की ऐसा भाव-भङ्गी दिखाते जो बड़ा ही विचित्र होता था। उनके सभी काम रुक जाते थे पर उनकी आँखें कभी बन्द नहीं होती थी। वे खाते भी नही थे। यदि उनका भतीजा उनकी अनावश्यक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये नहीं रहता तो वे मर जाते। इस अवस्था के फलस्वरूप उन्हें कई बीमारियों का सामना करना पड़ा, जिसका अनुभव पूर्वी योगियों में बहुधा अनुभव किया था। उनके चमड़े से खून के छोटे छोटे बून्द निकलने लगते। उनका शरीर मानो अग्नि शिखा पर रखा हो। उनकी आत्मा ठठेरे की जलती भट्टी थी जिसमें कि देवता रूपी अग्नि शिखा प्रज्वलित हो रही थी। कुछ समय बाद वे हरएक आदमी में ब्रह्म का अनुभव करने लगे। एक राही के रूप में उन्होंने सीता को देखा; वृक्ष के सहारे खड़े हुए एक अंग्रेज में श्रीकृष्ण का आभास पाया—वह देवत्व को प्राप्त हो गये; वह काली थे, राम थे, राधा थे, श्री कृष्ण की प्रेम प्रतिमा थे, सीता थे, और थे वे अतुलबल शाली हनुमान—! बिना रोक और पथ प्रदर्शक—जिसपर आवेग की उत्ताल तरंगे टकरा रही थीं बेहोशी के हरएक पहलू पर मैं पूरा प्रकाश देना चाहता हूं। मैं इस बात के विश्वास करने में उन्हें पूरी स्वतन्त्रता देता हूं (जैसा मैं स्वयं अपने लिये भी लेता हूं) कि ईश्वर के पागल उपासकों को सीधे ढंग से देखना चाहिये। भारतवर्ष में भो जिन भक्तों ने उनको देखा है वे दूसरे स्वरूप में नहीं देखे। और उन्होंने भी, कितनी विनम्रता के साथ डाक्टरी की जांच और व्यर्थ के नुकशों के लिये काफी मौका दिया। पीछे जब वे अपनी पूर्वावस्था की तरफ नजर फेरे और उस खोह को स्मरण किये जिसके जबड़े से ये बाल बाल बच चुके थे, तो इन्हें इस बात पर आश्चर्य होने लगा कि किस प्रकार वे उसमें से बच निकले।

हम लोगों के लिये आश्चर्य की बात तो यही है कि वे उस तूफान में विनष्ट होने के स्थान पर तूफानी अन्तरीप को सुरक्षित पार कर गये। मुसीबत का यह समय वस्तुतः एक आवश्यक अवस्था थी जहां से उनकी आत्मा, शक्ति सम्पन्न हो, ईश्वरानुभूति की प्रसन्नता और लय में प्रवाहित हो, मनुष्यत्व का द्योतक लेकर उठी। यह एक महान् अन्वेषण योग्य विषय है जिस पर बड़े-बड़े डाक्टर और शरीर विज्ञान वेत्ताओं का ध्यान आकृष्ट होना चाहिये। क्योंकि आत्मा की बनावट को विनाश करने या इसके अन्दर निहित तत्वों का अलग अलग करने के लिये अभी तक कुछ भी प्रमाण नहीं है। प्रश्न यही है कि किस प्रकार से इसको ऊंचे दर्जे के इन्द्रिय ज्ञान सम्बन्धी संयोग में परिणित किया जाय—किस प्रकार से गिरे हुए मकान को और अधिक ऊंचा उठाया जाय और वह भी इच्छा करते ही हम लोग आगे देखेंगे कि किस प्रकार रामकृष्ण पागलपन और विवेक तथा देवता और मनुष्यों के मालिक बनने की अवस्थायें थी। अब वे अतुल अन्धकार के दरवाजे को खोलेंगे और फिर आधुनिक सुकरात की तरह अपनी शिष्य मंडली से मुस्कराहट से भरी विद्वत्ता और कटाक्षपूर्ण वार्त्तालाप करेंगे।

किन्तु १८५८ में जिस समय का मैं वर्णन कर रहा हूं रामकृष्ण

सफलता के शिखर पर नहीं पहुंच चुके थे। अभी उनमें बहुत कमी थी। और यदि मैंने एक शब्द से ही इस अवस्था के अन्त होने का पहले ही से विचार करा लिया है तो यूरोपियन पाठकों को उनके पहले फैसले से सावधान रहना चाहिये। सन्तोष!··· आत्मोन्नतिक मार्ग बहुधा भूतकाल की जानकारी है। अन्त के लिये प्रतीक्षा है!

वास्तव में, ईश्वर प्राप्ति का यह अवारा भ्रमणकारी बिना पथ प्रदर्शक के अन्धे की तरह यात्रा पथ में अग्रसर हुआ। रास्ते पर चलने के स्थान वह झाड़ झंखारों में होते हुए खाई में गिर पड़ा। फिर भी वह अपनी यात्रा जारी रखा। वह हमेशा उठता और अपना द्वन्द जारी रखता। ——— (क्रमशः)

मणिमाला

हमको व्यवहार से प्रयोजन है।

व्यवहार ठीक रीति से करने में ही हमको शांति रहती है, जगत में हम अशांत होने को नहीं आये इसीसे शांति युक्त ही रहना चाहिये, शांति युक्त रहना ही हमारा कर्तव्य है; अशांति से हमको इस जगत् में किसी प्रकार का लाभ नहीं होता, कष्ट ही होता रहता है ऐसी अशांति जिससे होय ऐसा वर्ताव ही हम न करें।

माने हुए विषयजन्य सुख को प्राप्त करने के लिये हम कामना करते हैं और अशांत होते हैं, उसके प्रयत्न भी अशांतिमय हैं। कामना के अनुकूल फल हो जाय यह निश्चय नहीं है, हम देखते हैं कि कभी कामना के अनुसार फल होता है और कभी नहीं होता तब कामना वाली प्रवृत्ति का फल होता है, ऐसा क्यों माना जाय? कई समय तो कामना से विपरीत फल ही होता है। इसीसे निश्चय होता है कि वर्तमान कामना के साथ वर्तमान फल का सम्बन्ध नहीं है। इससे ऐसी कामना का हमेशा त्याग करना चाहिये।

जगत् में शांतिपूर्वक रहना ही हमारा कर्तव्य है, व्यवहार के साथ शांति न होय तो हमारा व्यवहार गलत है ऐसा समझना चाहिये। जिसमें हमारा और अन्यों का हित न होय ऐसा व्यवहार व्यवहार ही नहीं है। हमको यहां और आगे भी शांति होय ऐसा वर्ताव करना ही हमारा कर्तव्य है। हमको बुद्धिपूर्वक कार्य करना चाहिये, कार्य के लिये कार्य करना चाहिये। जिसमें हमको अपनी परतंत्रता का अनुभव होता है उसमें भावाभाव को छोड़ कर केवल यंत्र के समान ही कार्य करना चाहिये और जिसमें हमारी स्वतंत्रता का अधिकार है वहां मनको उदार और शुद्ध बनाकर दीर्घ दृष्टि से श्रेयस्कर भाव में लगाना चाहिये। छोटा संकुचित मन बहुत जल्दी खड्डे के जल के समान गदला हो जाता है महान और बहते जल के समान उदार भाव वाला और अपना भावाभाव छोड़कर कर्तव्य प्रवाह में बहता हुआ मन महान और निर्मल होता है।

* • * •

भगवान् ही सत्यस्वरूप, न्याय स्वरूप, प्रेम-स्वरूप तथा पवित्र स्वरूप हैं। इनके विरोधी जो गुण हैं अर्थात् असत्य, अन्याय, अप्रेम और अपवित्रता—इनकी गति समाजको विध्वंस करनेकी ओर होती हैं तथा सत्य, न्याय, प्रेम और पवित्रताकी गति समाजकी ओर होती है। मनुष्यके हृदयमें सत्य, न्याय, प्रेम और पवित्रता है अथवा मनुष्यकी आत्मामें ईश्वरका अंश वर्तमान है, ऐसा जानकर ही संसारकी रक्षा होती है। अतएव इस सत्यका अनुभव करना प्रत्येक मनुष्यका कर्त्तव्य है कि ईश्वरने स्वयं मानवसमाजकी प्रतिष्ठा की है, तथा मनुष्य समाज मनुष्यात्माकी रक्षा और शिक्षाके लिए उसीका एक सुन्दर विधान है। इस तत्वमें विश्वास करने से ही इस देशमें समाजविरोधिनी धर्मभावनाका अभ्युदय हुआ है।

———

सूचना

आगामी फाल्गुण शुक्ला द्वितीया, रविवार २ मार्च १९३० को श्रीरामकृष्ण परमहंस देवकी पुण्य जन्म तिथि भारतवर्ष तथा विदेश के सभी केन्द्रों में मनाई जायगी और सार्वजनिक उत्सव रविवार ९ मार्च को बड़े समारोहके साथ मनाया जायगा।

गत २१ जनवरी को श्रीरामकृष्ण मिशनने भारतवर्ष तथा विदेशी सभी केन्द्रों में पूज्यपाद स्वामी विवेकानन्द जीकी पुण्य जन्मतिथि बड़े समारोह के साथ मनाई गई। दरिद्र नारायणों को भोजन कराये गये और भक्तोंको प्रसाद बांटे गये।

स्वामी विवेकानन्दजी ने अपने गम्भीर मार्मिक भाषणसे १८९३ की विश्व धर्म महासभा Parliament of Religions. में हिन्दू धर्म की जो विजय वैजयन्ती फहराई थी, उसी के प्रभाव से गत जनवरी मासमें स्वामी ज्ञानेस्वरानन्द जीके उद्योग से शिकागों में एक वेदान्त केन्द्रकी स्थापना हुई है। स्वामी जीके सञ्चालन में इस केन्द्र के द्वारा हिन्दू धर्म के प्रचार के पर्याप्त प्रयत्न होंगे। आप बहुत ही उद्यमशील और पटु कार्यकर्ता हैं। हम इस केन्द्र को और समुन्नत रूप में देखने के अभिलाषी हैं।

समन्वय

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः॥ —गीता।

वर्ष ८] सौर पौष, सम्वत् १९८६ [अङ्क १२

रामकृष्णवचनामृत

चौबीसवां परिच्छेद।

(१)

श्रीरामकृष्ण दक्षिणेश्वरके काली मन्दिर में उसी पूर्व-परिचित कमरे में विश्राम कर रहे हैं। आज शनिवार है, १३ जून १८८५, जेठ की शुक्ला प्रतिपदा; जेठ की संक्रान्ति। दिन के तीन बजे होंगे। श्रीरामकृष्ण भोजन के बाद चारपाई पर जरा विश्राम कर रहे हैं।

पंडितजी फर्शपर चटाई में बैठे हुए हैं। शोक से विह्वल एक ब्राह्मणी कमरे के उत्तर तरफवाले दरवाजे के पास खड़ी हुई है। किशोरी भी हैं। मास्टर ने आकर प्रणाम किया। साथ द्विज आदि हैं। अखिल बाबू के पड़ोसी भी बैठे हुए हैं। उनके साथ एक छोकड़ा अभी पहले पहल आया हुआ है।

श्रीरामकृष्ण कुछ अस्वस्थ हैं। गले में गिल्टी पड़ गई है, कुछ जुकाम भी हो गया है। गले की बीमारी बस यहीं से शुरू होती है।

ज्यादा गरमी पड़ने के कारण मास्टर का भी शरीर अस्वस्थ रहता है। श्रीरामकृष्ण के दर्शनों के लिये वे लगातार दक्षिणेश्वर नहीं आ सके।